इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSK 001
संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य

खंड

1

संस्कृत साहित्य का इतिहास

खण्ड 1 का परिचय

MSK-001 'संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य' पाठ्यक्रम का यह प्रथम खण्ड है। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात् आप साहित्य की विविध विधाओं एवं साहित्यिक कृतियों से परिचित हो सकेंगे। यह खण्ड पाँच इकाइयों में विभाजित है। इस खण्ड की पहली इकाई महाकाव्य से सम्बन्धित है। इस इकाई में महाकाव्य के लक्षण, उसका उद्भव, विकास एवं प्रमुख महाकाव्यों यथा रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, बुद्धचरितम् आदि की विषय-वस्तु एवं शैलीगत वैशिष्ट्य पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

इकाई संख्या 2 खण्डकाव्य से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप खण्डकाव्य का लक्षण, उसके उद्भव एवं विकास की परम्परा का अध्ययन करेंगे। आप संस्कृत साहित्य के कुछ प्रमुख खण्डकाव्यों यथा मेघदूतम्, ऋतुसंहारम्, नीतिशतकम् आदि की कथावस्तु से परिचित होंगे तथा शैली के आधार पर इन खण्डकाव्यों का क्या वैशिष्ट्य है? इसका भी समझ सकेंगे।

इकाई संख्या 3 कथा साहित्य एवं ऐतिहासिक काव्य से सम्बन्धित है। संस्कृत साहित्य में कथायें प्रेरक के रूप में कार्य करती है। ये कथायें हमें नीतिगत शिक्षा प्रदान करती हैं। इस इकाई में आप कथासाहित्य एवं ऐतिहासिक काव्य के उद्भव एवं विकास परम्परा को समझने के साथ-साथ कथासाहित्य एवं ऐतिहासिक काव्य से सम्बन्धित कथाग्रन्थों एवं काव्यों से परिचित होंगे।

इकाई संख्या 4 गद्य तथा चम्पू काव्य से सम्बन्धित है। 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इस उक्ति के आधार पर गद्यकाव्य को कवियों की कसौटी कहा गया है। अतः संस्कृत साहित्य में कवियों ने गद्यकाव्य लिखकर साहित्य के कोश को समृद्ध बनाया। इस इकाई में आप गद्यकाव्य की उत्पत्ति, उसकी विकास परम्परा से परिचित होंगे तथा प्रमुख गद्यकाव्यों यथा वासवदत्ता, हर्षचरित, कादम्बरी आदि की कथावस्तु एवं शैलीगत विशिष्टताओं का अध्ययन करेंगे।

इकाई संख्या 5 दृश्य काव्यः रूपक है। दृश्य काव्य अभिनेय होता है। अतः इसको रूप, रूपक आदि नामों से जाना जाता है। दृश्य काव्य : रूपक के उद्भव एवं विकास की एक लम्बी परम्परा है क्योंकि इस विषय पर विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत

प्रस्तुत किये हैं। इस इकाई में आप इन्हीं मतों, रूपक भेदों एवं प्रमुख रूपकों का परिचय प्रापत करेंगे।

इकाई 1 महाकाव्य

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 महाकाव्य की परिभाषा एवं लक्षण

1.3 महाकाव्य का उद्भव एवं विकास

1.4 महाकाव्य : विषय-वस्तु एवं शैली के आलोक में

- 1.4.1 कुमारसम्भवम्
- 1.4.2 रघुवंशम्
- 1.4.3 बुद्धचरितम्
- 1.4.4 जानकीहरणम्
- 1.4.5 दशावतारचरितम्
- 1.4.6 नैषधीयचरितम्
- 1.4.7 अन्य महाकाव्य

1.5 सारांश

1.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- महाकाव्य के स्वरूप से परिचित होंगे।
- संस्कृत साहित्य में महाकाव्य के इतिहास से परिचित होंगे।
- संस्कृत साहित्य में महाकाव्य की परम्परा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्कृत साहित्य में कुछ प्रमुख महाकाव्यों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

काव्य पढने से छात्रों के हृदय में अनन्त शक्ति का संचार होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। काव्य से कीर्ति, धन, व्यवहार ज्ञान, अमङ्गल का निवारण, शीघ्र ही परम आनन्द की अनुभूति– ये सब प्राप्त होते हैं। इन सभी कारणों से काव्य का शिक्षण प्रधान है। संसार में होने वाली विभिन्न प्रकार की घटनाओं तथा प्रवृत्त विचारों से कवि का हृदय जब रसाप्लावित होता है, तब उसकी कलम से अत्यन्त रमणीय कविता का प्रवाह निःसृत होता है। **'कवनीयं काव्यम्'** इस प्रकार

ध्वन्यालोक की लोचन टीका में अभिनवगुप्त द्वारा कहा गया है। **'कवेः कर्म काव्यम्'**। वह पहले कवि के ह्रदय में आविर्भूत होता है तथा बाद में पाठकों के ह्रदय में साक्षात् रूप से प्रवेश करता है। संस्कृत साहित्य में रामायण महाभारत, रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीयचरित इत्यादि सुप्रसिद्ध महाकाव्य हैं। इस इकाई में आप इन्हीं काव्य ग्रन्थों के विषय-वस्तु ,शैली एवं रस का अध्ययन करेंगे।

1.2 महाकाव्य की परिभाषा एवं लक्षण

संस्कृत भाषा में महाकाव्यों की रचना के साथ ही समीक्षकों का ध्यान काव्य के लक्षण देने की दिशा में गया। भामह ने अपने काव्यालंकार में, दण्डी ने काव्यादर्श में, अग्निपुराण में और आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। साहित्यदर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है– 1. यह सर्गों में विभक्त होता है। 2. इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या वंशज कुलीन अनेक राजा होते हैं। 3, शृङ्गार, वीर और शान्त रस में से कोई एक प्रधान रस होता है और अन्य उसके सहायक। 4. इसमें सभी नाटकीय सन्धियाँ होती हैं। 5. इसका कथानक ऐतिहासिक होता है या किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बद्ध। 6. इसमें चतुर्वर्ग– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन होता है और उनमें से किसी एक फल की प्राप्ति का वर्णन होता है। 7. प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तु-निर्देश होता है। कहीं दुर्जन-निन्दा और सज्जन-प्रशंसा भी रहती है। 8. प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं, किन्तु अन्त में छन्द परिवर्तन हो जाता है। 9. इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं, जो न बहुत छोटे और न बड़े होते हैं। 10. कहीं विभिन्न छन्दों वाले सर्ग भी होते हैं। 11. सर्ग के अन्त में भावी कथा का संकेत होता है। 12. इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, मन्त्र, पुत्र, उदय आदि का वर्णन रहता है। 13. ग्रन्थ का नाम, कवि, कथानक, नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखना चाहिए। 14. सर्गों का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखना चाहिए। आर्ष महाकाव्यों में सर्गों का नाम आख्यान पर निर्भर होता है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृङ्गारवीरशान्तनामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाऽऽशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।। साहित्यदर्पण परि. 6।।

महाकाव्य लक्षण के लिए भारतीय आचार्यों के समान ही पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ विशिष्ट परिभाषाएँ इस प्रकार दी हैं— फ्रेन्च विद्वान् लीबसु के मतानुसार— "महाकाव्य प्राचीन घटनाओं का छन्दोबद्ध रूपक है"। लार्ड केम्पस के अनुसार— "महाकाव्य वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन है"। हॉब्स के अनुसार "कविता को ही महाकाव्य कहते हैं"। सुप्रसिद्ध समालोचक बावरा के अनुसार "सर्वसम्मति महाकाव्य वह कथात्मक रूप है जिसका आकार बृहद् होता है, जिसमें महत्त्वपूर्ण एवं गरिमापूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन कथा होती है, उसे पढने के पश्चात् विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। सारांश में पाश्चात्य महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है— महाकाव्य का नायक राष्ट्र एवं जाति का प्रतिनिधि होता है, जिसके द्वारा राष्ट्र एवं जाति की विजय प्रदर्शित की जाती है। महाकाव्य के कार्य और पात्र महान् होते हैं। विषय परम्परा प्रतिष्ठित, लोकप्रचलित या राष्ट्रीय होती है। घटनाओं का बाहुल्य होने के कारण कथानक शिथिल होता है। महाकाव्य में अनियन्त्रित, असम्भव एवं अद्भुत तत्त्व अधिक होते हैं। महाकाव्य एक बृहदाकार प्राक्कथन प्रधान काव्य होता है, जिसकी शैली की महत्ता होती है। छन्द प्रायः ही होता है और वीर रस की प्रचुरता रहती है।

आरिस्टाटिल के मतानुसार महाकाव्य का आकार इतना होना चाहिए जो एक दिन में पढा जा सके जबकि एक अन्य विद्वान् का कथन है कि महाकाव्य में केवल एक ही वर्ष की घटनाएँ होनी चाहिए। प्रो. डिक्सन के अनुसार 'राष्ट्रीय कविता ही सच्चा महाकाव्य सिद्ध होती है।' पाश्चात्य दृष्टिकोण से महाकाव्य के प्रधान दो भेद हैं— विकसित महाकाव्य और अलंकृत महाकाव्य। विकसित महाकाव्य वह है जो अनेक शताब्दियों से अनेक हाथों से संशोधित, संपादित, परिवर्द्धित एवं संस्कृत होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर सका है। उसका आधार प्राचीन गाथाएँ होती हैं। अलंकृत महाकाव्य वह है, जिसमें एक ही व्यक्ति का काव्य कौशल दर्शित है। विकसित महाकाव्यों में इलियड तथा ओडिसी और महाभारत और अलंकृत महाकाव्यों में रामायण को उद्धृत किया जा सकता है।

1.3 महाकाव्य का उद्भव एवं विकास

वेद हमारे यहाँ एक मत से प्राचीनतम ग्रन्थ स्वीकार किये गये हैं। वेदों में भी ऋग्वेद प्राचीन माना गया है। अतः किसी भी विधा के प्रारम्भिक सूत्रों का जब प्रश्न समक्ष आता है, तब सर्वप्रथम ऋग्वेद की ओर ही ध्यान जाता है। यद्यपि आज विद्वानों का

सर्वमान्य सिद्धान्त यही है कि भारतीय कवियों को काव्य की प्रेरणा आदि महाकाव्य वाल्मीकीय 'रामायण' तथा कुछ अंशों में भारतीय ऐतिहासिक महाकाव्य 'महाभारत' से मिली है तथापि महाकाव्य की उत्पत्ति का बीज हमें वेदों से प्राप्त होता है। महाकाव्यों का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान– सूक्तों, इन्द्र, वरुण, विष्णु और उषा आदि के स्तुति-मन्त्रों तथा नाराशंसी ऋचाओं एवं गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों में हरिश्चन्द्रोपाख्यान, शुनःशेप कथा तथा इतिहास पुराण काल में 'सुपर्णाध्याय' आख्यान में काव्यत्व प्रचुर मात्रा में है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य में परिणत हो गया। रामायण और महाभारत आगे चलकर परवर्ती काव्यों और महाकाव्यों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ हो गये।

संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की विकास परम्परा में संस्कृत व्याकरण के मुनित्रय– पाणिनि, वररुचि तथा पतञ्जलि का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आचार्य रुद्रट कृत **'काव्यालंकार सूत्र'** के टीकाकार नमिसाधु ने पाणिनि द्वारा रचित दो महाकाव्यों **'जाम्बवतीविजय'** तथा **'पातालविजय'** का उल्लेख किया है। इसमें 18 सर्गों में श्रीकृष्ण का पाताल में जाकर जाम्बवती के विजय और परिणय की कथा वर्णित है। वररुचि (350 ई.पू.) के नाम से भी अनेक सुन्दर श्लोक विभिन्न सुभाषित संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। इन्होंने **'स्वर्गारोहण'** नामक काव्य की रचना की। इसे पतञ्जलि (4-3-101) ने **'वाररुचं काव्यम्'** कहकर सम्बोधित किया है। समुद्रगुप्त के कृष्णचरित काव्य में इसका उल्लेख है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि (150 ई.पू.) ने भी इसी शृङ्खला में **'महानन्दकाव्य'** लिखा है। समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित की प्रस्तावना में लिखा है कि पतञ्जलि ने योगशास्त्र की व्याख्या के रूप में महानन्द नामक काव्य लिखा। रुद्रदामन का गिरनार वाला शिलालेख अलंकृत काव्य-शैली का नमूना है। प्रयाग के अशोक स्तम्भ पर उत्कीर्ण हरिषेण कृत समुद्रगुप्त प्रशस्ति सुन्दर एवं समृद्ध काव्य का उदाहरण है। काव्य साहित्य की स्पृहणीय प्रगति वत्सभट्टि के मन्दसौर के अभिलेख से भी स्पष्ट है।

वेद संहिता के पश्चात् संस्कृत साहित्य की काव्यधारा का उद्गम मुख्यतः आदिकाव्य रामायण तथा वीरकाव्य महाभारत ही हैं। महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि और उनकी कृति रामायण संस्कृत का आदि महाकाव्य है –

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

उपर्युक्त पद्य अनुष्टुप् छन्द समाक्षर से युक्त एवं प्रथम बार प्रयुक्त हुआ है। आदिकवि वाल्मीकि का यह श्लोक संस्कृत काव्य का प्रथम श्लोक है और इसी से महाकाव्य का प्रादुर्भाव हुआ है। इस युग में महाकाव्य या काव्य लक्षण विषय पर भी वाल्मीकि कहते हैं–

अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः।

छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम्।।

रामायण के पश्चात् महर्षि वेदव्यास विरचित वीरकाव्य महाभारत में भी महाकाव्यों के बीज दृष्टिगोचर होते हैं। अतः रामायण और महाभारत संस्कृत काव्य के आदि महाकाव्य/उपजीव्य महाकाव्य अथवा आर्ष महाकाव्य कहे जाते हैं। संस्कृत के महाकाव्यों के लिए ये दोनों ग्रन्थ रत्न उपजीव्य हैं।

इसके पश्चात् महाकवि कालिदास का काव्याकाश में उदय होता है। विद्वानों का एक समूह जहाँ अश्वघोष को प्रथम कवि मानकर **'बुद्धचरितम्'** को महाकाव्य परम्परा का प्रारम्भिक ग्रन्थ मानता है, वहाँ द्वितीय समूह कालिदास को प्रथम कवि मानकर 'कुमारसम्भव' को प्रथम महाकाव्य के रूप में मानता है। इस प्रकार उत्तरकाल में कविता-कामिनी में विद्वत्ता के संचार का श्रेय महाकवि भारवि कृत 'किरातार्जुनीयम्' को जाता है। भट्टिकाव्य 'रावणवधम्', कुमारदास कृत 'जानकीहरणम्' माघ कृत 'शिशुपालवधम्', श्रीहर्ष कृत 'नैषधीयचरितम्' कविराज कृत 'माधवभट्ट'। इस प्रकार अनेक कवियों ने संस्कृत साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया है। महाकाव्य के विकास का इतिहास– 1. रूपगत विकास, 2. शैलीगत विकास,

1. **रूपगत विकास**– (क) वैदिक काल (ख) वीर-महाकाव्य काल (ग) लौकिक-महाकाव्य काल,
2. **शैलीगत विकास**– (क) प्रसादात्मक शैली (ख) अलंकारात्मक शैली (ग) श्लेषात्मक शैली।

1.4 महाकाव्य : विषय-वस्तु एवं शैली के आलोक में

1.4.1 कुमारसम्भवम्

महाकवि कालिदास ने दो महाकाव्य लिखे हैं– कुमारसम्भवम् तथा रघुवंशम्।

कुमारसम्भवम् महाकाव्य कालिदास की प्रारम्भिक रचना है जिसमें कवि ने शिव-पार्वती का विवाह, कुमार कार्तिकेय के जन्म एवं उनके द्वारा तारकासुर के वध की कथा उपन्यस्त की है। महाकवि कालिदास विरचित कार्तिकेय के जन्म से सम्बन्धित महाकाव्य कुमारसम्भवम् की गणना संस्कृत के पंच महाकाव्यों में की जाती है। कला के हर प्रतिमान की कसौटी पर कुमारसम्भवम् एक श्रेष्ठ महाकाव्य सिद्ध होता है। मानव-मन में कवि की विलक्षण पैठ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। पार्वती, शिव, ब्रह्मचारी आदि सभी पात्र मौलिक व्यक्तित्व व जीवन्तता से सम्पन्न हैं। प्रकृति-चित्रण में कवि का असाधारण नैपुण्य दर्शनीय है। काम-दहन तथा कठोर तपस्या के फलस्वरूप पार्वती को शिव की प्राप्ति सांस्कृतिक महत्त्व का प्रसंग है। कवि ने दिव्य दम्पत्ति को साधारण मानव प्रेमी-प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत कर मानवीय प्रणय व गार्हस्थ्य जीवन को गरिमा मण्डित किया है। यह महाकाव्य 17 सर्गों में समाप्त हुआ है किन्तु

लोकधारण है कि केवल प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास रचित हैं। बाद के अन्य नौ सर्ग अन्य कवि की रचना है ऐसा माना जाता है।

विषय-वस्तु – संक्षेप में इस महाकाव्य की विषय-वस्तु इस प्रकार है– सर्ग1– हिमालय-वर्णन तथा पार्वती की उत्पत्ति, सर्ग2– तारकासुर से पीड़ित देवों का ब्रह्मा के पास जाना और शिव-पार्वती के पुत्र स्कन्द द्वारा तारकासुर के वध का उपाय ब्रह्मा के द्वारा बताया जाना, सर्ग3– कामदेव द्वारा शिव की तपस्या का भंग किया जाना और क्रुद्ध शिव द्वारा कामदेव को भस्मसात् करना, सर्ग4– पति के नाश पर रति का विलाप, सर्ग5– पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन और ब्रह्मचारी वेशधारी शिव से पार्वती का संलाप और समागम, सर्ग6– विवाहेच्छुक शिव का पार्वती के याचनार्थ सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजना, सर्ग7– शिव की वरयात्रा और पार्वती परिणयय, सर्ग8– शिव पार्वती का दाम्पत्य जीवन, केलि-विहार वर्णन। (कुछ विद्वान केवल् आठ सर्ग को ही कालिदास की रचना मानते हैं)। सर्ग9– दाम्पत्य सुखानुभव करते हुए विविध पर्वतों आदि पर घूमकर कैलाश पर्वत पर वापस आना, सर्ग10– कार्तिकेय (कुमार स्कन्द) का गर्भ में आना, सर्ग11– कुमार-जन्म तथा कुमार का बाल्य-वर्णन, सर्ग12– कुमार का सेनापतित्व, सर्ग13– कुमार द्वारा सैन्य संचालन, सर्ग 14– देव-सेना का आक्रमणार्थ प्रयाण, सर्ग15– देवासुर सैन्य संघर्ष, सर्ग16– युद्ध-वर्णन, सर्ग17– तारकासुर-वध।

शैली – कुमारसम्भवम् महाकाव्य कालिदास की प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन है। इसमें भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सुमधुर समन्वय है। अलंकारों की सुन्दर छटा, वर्णनों में सजीवता, व्यापकता और स्वाभाविकता, भाषा का परिष्कार, कल्पना की उदात्तता, भावों की मनोज्ञता, रसों का सुन्दर परिपाक, रसराज शृङ्गार का सर्वाङ्गीण वर्णन, तपोमूलक परिष्कृत प्रेम का महत्त्व प्रतिपादन तथा छन्द-योजना में सिद्धहस्तता कुमारसम्भवम् की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस दृष्टि से कुमारसम्भवम् एक सफल महाकाव्य है।

कालिदास की भाषा वशवर्तिनी उनके भावों का अनुगमन करती है। शृङ्गार का भाषामूलक सौन्दर्य इस उदाहरण में देखा जा सकता है। मधुमायिनी का रसास्वाद करते हुए दम्पती शिव-पार्वती को कैलाश पर्वत पर शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर उनके भाव-विलास को समीरित कर रहा था –

स्वर्वाहिनीवारिविहारचारी, रतान्तनारीश्रमशान्तिकारी।
तौ पारिजातप्रसवप्रसङ्गो, मरुत् सिषेवे गिरिजागिरीशौ।। (कुमारसम्भव– 9/38)

इसमें व, र, श, स वर्णों का अनुप्रासमूलक भाषासौष्ठव श्रुतिसुखद है।

कालिदास के काव्यों में मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव सौन्दर्य पग-पग पर परिलक्षित होता है।

कुमारसम्भवम् में षष्ठ सर्ग में कन्या सुलभ शालीनता का सुन्दर वर्णन मिलता है –

एवंवादिनी देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।(कुमारसम्भव 6/84)

कालिदास ने पार्वती द्वारा शिव के वरण के प्रसङ्ग में मार्मिक व्यंजना प्रस्तुत की है। एक ओर शिव की अकिंचनता, दुर्वेष, असौन्दर्य और अप्रभावोत्पादकता है, दूसरी ओर पार्वती का अलौकिक सौन्दर्य, सुकुमारता और दिव्य आकर्षण है। दोनों का विरोध हास्य-मिश्रित व्यंग्य में प्रकट किया गया है। वटुरूपधारी शिव का कथन है कि शिव से प्रेम करके चन्द्रकला और तुम दोनों ने अपना दुर्भाग्य बुलाया है। कोमल भाव के साथ ललित पदावली का समन्वय भी दर्शनीय है।

द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां, समागमप्रार्थनया कपालिनः।

कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी।।
(कुमारसम्भव– 5/71)

कुमारसम्भवम् महाकाव्य का प्रधान रस शृङ्गार रस है। शिव-पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की अविभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है। यदि भागीरथी के लिए समुद्र सर्वस्व है, तो समुद्र के लिए भागीरथी। यही स्थिती शिव और पार्वती के रसात्मक अनुराग की थी –

तं यथात्मसदृशं वरं वधू-
रन्दरज्यत वरस्तथैव ताम्।
सागरादनपगा हि जाह्नवी
सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाव।।(कुमारसम्भव– 8/16)

'उपमा कालिदासस्य' उक्ति से स्पष्ट होता है कि कालिदास को उपमा अलंकार कितना प्रिय होगा। साथ ही कालिदास ने अन्य अलंकारों का भी यथास्थान प्रयोग किया है। कुमारसम्भव महाकाव्य में वर्णित उपमा का एक उदाहरण इस प्रकार है– कामदेव के विनाश से दुःखित रति की अवस्था वायु से बुझाये हुए दीपक की धूमावृत वर्तिका के तुल्य अन्धकारावृत थी।

गत एव न ते निवर्तते
स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मा-
मविषह्यव्यसनेन धूमिताम्।।(कुमारसम्भव 4/30)

इसी प्रकार अर्थान्तरन्यास अलंकार के सम्बन्ध में भी कालिदास विशिष्ट थे– **'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते'**। इस प्रकार रूपक, यमक, श्लेष आदि अन्य अलंकारों का भी निदर्शन इस महाकाव्य में प्राप्त होता है।

प्रकृति का मानवीकरण भी इस महाकाव्य में द्रष्टव्य है। उन्होंने अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। छन्द-योजना के अन्तर्गत छोटे छन्दों का प्रयोग अधिक मिलता है। इस महाकाव्य में उपजाति और अनुष्टुप् छन्दों का अधिकांशतः प्रयोग हुआ है तथा सर्गान्त छन्दों में मालिनी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, वसन्ततिलका इत्यादि छन्दों का प्रयोग है।

1.4.2 रघुवंशम्

यह कालिदास विरचित द्वितीय महाकाव्य है। संस्कृत महाकाव्यों में इसका उत्कृष्ट स्थान है। डॉ. वचनदेव कुमार के शब्दों में ''**रघुवंश संस्कृत साहित्य के सुरम्य प्रासाद का मणिमण्डित प्रवेश द्वार है। संस्कृत साहित्योद्यान का मनोरम सरसिज मण्डित सरोवर है।**'' यह उन्नीस सर्गों का महाकाव्य है, इन सर्गों में रघुवंशी राजाओं का वर्णन है। इस वर्णन में कालिदास ने रामायण में दी गई वंशावली का अनुसरण न करके वायु-पुराण तथा विष्णु-पुराण में वर्णित वंशावली का ग्रहण किया गया है।

विषय-वस्तु – इस महाकाव्य की विषय-वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। प्रथम सर्ग में राजा दिलीप की सन्तानहीनता और सन्तान प्राप्त्यर्थ कुलगुरु वशिष्ठ के आदेशानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा का व्रत लेने का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में नन्दिनी की सेवा, राजा की परीक्षा, प्रसन्न नन्दिनी द्वारा सन्तान लाभ के वरदान का वर्णन है। तृतीय सर्ग में रघु का जन्म, विद्याध्ययन, इन्द्र से युद्ध में विजय-प्राप्ति तथा रघु के राज्याभिषेक का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में रघु के दिग्विजय का वर्णन है, पंचम सर्ग में ब्रह्मचारी कौत्स द्वारा गुरुदक्षिणा के लिए 14 करोड़ रुपए की याचना, तदर्थ रघु का कुबेर पर आक्रमण, घन वृष्टि, प्रसन्न कौत्स द्वारा रघु को पुत्र लाभ का आशीर्वाद, फलस्वरूप पुत्र अज का जन्म, इन्दुमती स्वयंवर के लिए अज का प्रस्थान की कथा वर्णित है। षष्ठ सर्ग में इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन है। सप्तम सर्ग में अज-इन्दुमती परिणय, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध और अज की विजय वर्णित है। अष्टम सर्ग में अज के राज्याभिषेक, दशरथ-जन्म, इन्दुमती-वियोग और अज के विलाप का वर्णन है। नवम सर्ग में दशरथ का मृगया-वर्णन, श्रवणकुमार की हत्या और दशरथ को शाप-प्राप्ति की कथा वर्णित है। दशम सर्ग में पुत्रेष्टियज्ञ, राम आदि 4 पुत्रों के जन्म का वर्णन है। एकादश सर्ग में सीता-स्वयंवर और राम आदि का विवाह वर्णित है। द्वादश सर्ग में राम-वनवास, सीता-हरण, युद्ध, रावण-वध का वर्णन है। त्रयोदश सर्ग में राम का पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्गस्थ स्थलों का विशद वर्णन है। चतुर्दश सर्ग में राम-राज्याभिषेक, सीता-परित्यागकी कथा वर्णित है। पञ्चदश सर्ग में कुश-लव-जन्म, राम के स्वर्गारोहण का वर्णन है। षोडश सर्ग में कुश का राज्याभिषेक, कुश का कुमुद्वती से विवाह का वर्णन है। सप्तदश सर्ग में कुश का स्वर्गवास, कुश-पुत्र अतिथि के राज्याभिषेक का वर्णन है। अष्टादश सर्ग में

अतिथि तथा उसके वंशज 21 राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। एकोनविंशति सर्ग में अग्निवर्ण का राज्याभिषेक, उसकी अत्यधिक विषयासक्ति, राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर स्वर्गवास, उसकी रानी का राज्याभिषेक, गर्भस्थ बालक के उत्तराधिकारी होने का अमात्यों द्वारा निर्णय लेने का वर्णन है।

शैली –

विलासिनीलासमनोभिरामा,
रामार्पितश्रीः श्रितसौकुमार्या।
सालंकृतवाग्वनिता विभाति
श्रीकालिदासस्य कलाकलापैः।।

आचार्य कपिलदेव द्विवेदी के कथनानुसार कविता कामिनी कान्त कालिदास न केवल संस्कृत वाङ्मय के, अपितु विश्व-वाङ्मय के मुकुटालंकार हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि बाह्य-जगत् और अन्तर्जगत् की तात्त्विक विधाओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम पदावली में उनको अनुस्यूत करती है।

कालिदास ने भाव-सौष्ठव आदि के साथ ही भाषा-सौष्ठव, पद-लालित्य एवं प्राञ्जलता पर भी पूरा ध्यान दिया है। कालिदास की भाषा रसानुकूल होती है। प्रकरण, प्रसंग, पात्र और वर्ण्य विषय के अनुरूप शब्दावली का संचयन मिलता है। वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जानकी के करुण-क्रन्दन का बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। जानकी के शोक पर संवेदना प्रकट करते हुए मोरों ने नाचना, भ्रमरों ने कुसुम रसास्वाद, मृगियों ने कुश-चर्वण छोड़ दिया था। इस प्रकार सारे वन में करुण का ही दृश्य उपस्थित हो गया है –

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृङ्गा
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव
मत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि।। (रघुवंश 14/69)

कालिदास की भाषा उसके भावों का अनुसरण करती है। कालिदास ललित भावों के कवि हैं। उनके काव्यों में कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव-सौन्दर्य पग-पग पर परिलक्षित होता है। दम्पती के सुन्दर सम्बन्धों एवं समन्वयात्मक संपर्क की अभिव्यक्ति अज-विलाप में परिलक्षित होती है –

गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना
हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।। (रघुवंश 8/67)

कालिदास शृङ्गार रस के कवि हैं। वे सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृङ्गार के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। करुण रस के भी कतिपय वर्णन अत्यन्त मार्मिक हैं। वीर

रस के प्रसंग यद्यपि कम हैं, तथापि उनमें कालिदास की योग्यता किसी भी प्रकार कम नहीं है।

कालिदास के काव्यों में अलंकारों का प्रयोग अनायास ही प्राप्त होता है। उनकी रचना में अनायास ही आने वाले अलंकारों में उपमा का व्यापक प्रयोग है, अन्य अलंकार हैं– रूपक, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, विभावना, निदर्शना, दृष्टान्त, विरोधाभास, परिणाम, यमक आदि। उपमा कालिदास का प्रिय अलंकार है। उनकी उपमाएँ असाधारण और मनोरम होती हैं। षष्ठ सर्ग में स्वयंवर में आये हुए राजाओं के समक्ष वरणार्थ इन्दुमती संचरण करती है। प्रस्तुत श्लोक में इन्दुमती की तुलना संचारिणी दीपशिखा से की गई है –

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभावं स स भूमिपालः।। (रघुवंश 6/67)

कालिदास के वर्णनों में वैचित्र्य और वैविध्य दोनों हैं। उन्होंने अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। भावों की अभिव्यक्ति आदि गुण कालिदास के वर्णनों की विशेषताएँ हैं।

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में सन्ध्याकाल में सूर्यास्त का वर्णन इस प्रकार है –

संचारपूतानि दिगन्तराणि
कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा
प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः।। (रघुवंश 2/15)

इसी प्रकार त्रयोदश सर्ग में प्रकृति के मानवीकरण तथा उसके तादात्म्य का अनूठा निदर्शन है। राम सरयू नदी को देखकर भाव-विभोर हैं और उसे माता सम्बोधित करते हैं।

सेयं मदीया जननीव तेन
मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्त।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां
तरङ्गहस्तैरुपगूहतीव।। (रघुवंश 13/63)

कालिदास ने छन्द प्रयोग की दृष्टि से छोटे छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। उनके सर्वाधिक प्रिय छन्द उपजाति तथा अनुष्टुप् थे। रघुवंश के नौ सर्गों में उपजाति मुख्य छन्द है तथा छह सर्गों में अनुष्टुप् मुख्य छन्द है। अन्य छन्दों में वंशस्थ, रथोद्धता, वैतालीय तथा द्रुतविलम्बित हैं। सर्गान्त में कवि ने मालिनी, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, हरिणी, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी और महामालिनी छन्दों का प्रयोग किया है। रघुवंश के नवम सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग है।

1.4.3 बुद्धचरितम्

संस्कृत महाकाव्यों की अजस्र परम्परा में अश्वघोष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत के बौद्ध कवियों में उनका स्थान सबसे ऊँचा है। ये पहले ब्राह्मण थे तथा साकेत

के निवासी थे। इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। बचपन में इन्हें वैदिक धर्म की शिक्षा दी गई थी परन्तु पार्श्व के शिष्य आचार्य पूर्णयश ने इन्हें बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। वह कनिष्क के समय में आयोजित चतुर्थ बौद्ध-महासमिति का संचालक एवं कार्याध्यक्ष था। कनिष्क के सभापण्डित होने से इनका समय ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी है। इनके समय की खोज करने में सिलवाँ लेवी का नाम आदर से लिया जाता है। इन्होंने चीनी भाषा के अनुवादों का सम्यक् विवेचन करके अश्वघोष को सम्राट् कनिष्क का समकालीन स्वीकार किया है।

अश्वघोष द्वारा लिखित ग्रन्थों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं— दार्शनिक वर्ग, साहित्यिक वर्ग। दार्शनिक ग्रन्थ चार हैं— वज्रसूची, महायानश्रद्धोत्पाद, गण्डीस्तोत्रगाथा तथा सूत्रलंकार। साहित्यिक ग्रन्थों में अश्वघोष की तीन कृतियाँ स्वीकार की गई हैं— बुद्धचरित, सौन्दरनन्द तथा शारिपुत्रप्रकरण। इनमें से प्रथम दो महाकाव्य हैं तथा अन्तिम प्रकरण कोटि का रूपक है। आचार्य कपिल देव द्विवेदी लिखित संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पुस्तक में एक गेय नाटक का भी उल्लेख किया गया है जिसका नाम है राष्ट्रपाल, यह अश्वघोष कृत 28 सर्गों का महाकाव्य है किन्तु पूरा ग्रन्थ संस्कृत में उपलब्ध नहीं है। संस्कृत में प्रथम सर्ग के आरम्भिक कुछ श्लोक तथा चौदहवें सर्ग के 32वें श्लोक से ग्रन्थ के अन्त तक का भाग नहीं मिलता। चीनी और तिब्बती भाषा में पूरे महाकाव्य का अनुवाद सुरक्षित है जिनके आधार पर ई. एच. जॉनस्टन ने इसका अंग्रेजी अनुवाद करके उपलब्ध मूल भाग के सम्पादन एवं विस्तृत भूमिका के साथ प्रकाशित कराया।

वर्ण्य-विषय— संस्कृत में प्राप्त बुद्धचरित बुद्ध के जन्म से लेकर बुद्धत्व की प्राप्ति तक का ही प्रतिपादन करता है। शेष भाग मे धर्मचक्रप्रवर्तन से लेकर बुद्ध के महापरिनिर्वाण एवं अशोक के द्वारा स्तूप निर्माण तक का वर्णन है। जॉनस्टन के द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवाद पर आश्रित हिन्दी रूपान्तर को आधार बनाकर जबलपुर के पं. रामचन्द्रदास शास्त्री ने सम्पूर्ण बुद्धचरित को संस्कृत में रूपान्तरित किया है। पूरे बुद्धचरित का चीनी अनुवाद धर्मरक्ष, धर्मक्षेम या धर्माक्षर नामक भारतीय विद्वान् ने किया था। तिब्बती भाषा में अनुवाद 800ई. के लगभग हुआ था। चीनी यात्री इत्सिंग ने इसे विशाल महाकाव्य बताया है। प्रो. कॉवेल ने 1893ई. में इंग्लैण्ड से इसका संस्करण प्रकाशित किया था।

बुद्धचरितम् महाकाव्य की सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है— सर्ग1— बुद्ध का जन्म, सर्ग2— अन्तःपुर में विहार, सर्ग3— रोगी और वृद्ध आदि व्यक्तियों को देखकर मन में संवेग की उत्पत्ति, सर्ग4— रमणियों द्वारा बुद्ध को अपने जाल में फँसाने की चेष्टा और बुद्ध द्वारा उनका तिरस्कार, सर्ग5— बुद्ध का घर से अभिनिष्क्रमण, सर्ग6— बुद्ध को छोड़कर घुड़सवार छन्दक का नगर में लौटना, सर्ग7— गौतम का तपोवन में प्रवेश, सर्ग8— अन्तःपुर की नारियों का विलाप, सर्ग9— कुमार का अन्वेषणय, सर्ग10— बिम्बिसार का आगमन, सर्ग11— काम की निन्दा, सर्ग12— बुद्ध का अराड ऋषि के आश्रम में गमन और अराड द्वारा धर्मोपदेश, सर्ग13— मार (कामदेव) का

बुद्ध की तपस्या में विघ्न डालना। दोनों का युद्ध और कामदेव की पराजय, सर्ग14– बुद्धत्व की प्राप्ति। (संस्कृत अंश यहीं तक प्राप्त होता है।) सर्ग15– धर्मचक्रप्रवर्तन, सर्ग16– अनेक शिष्यों का दीक्षित होना, सर्ग17– महाशिष्यों की प्रव्रज्या, सर्ग18– अनाथपिण्डद की दीक्षा, सर्ग19– पिता-पुत्र समागम, सर्ग20– जेतवन स्वीकारय, सर्ग21– प्रव्रज्या स्रोत वर्णन, सर्ग22– गौतम का आम्रपाली के उपवन में गमन, सर्ग23– आयु पर अधिकार करने के प्रकार का वर्णन, सर्ग24– गौतम की लिच्छिवियों पर अनुकम्पा, सर्ग25– गौतम का निर्वाण पथ पर अभियान, सर्ग26– महापरिनिर्वाण, सर्ग27– निर्वाण की प्रशंसा, सर्ग28– धातु विभाजन।

शैली– अश्वघोष वैदर्भी रीति का कवि हैं। वह रामायण, महाभारत और कालिदास की शैली से अधिक प्रभावित है, अतः उनकी शैली में प्रासाद और माधुर्य गुण का बाहुल्य है। उसका दर्शनशास्त्र और व्याकरण पर असाधारण अधिकार है, अतः वह दर्शनों के सूक्ष्म तत्त्वों को अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में रखने में समर्थ हैं। वर्णनों में यथार्थता, सजीवता, स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है। अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का बहुत सुन्दरता से प्रयोग किया है। भाषा सौष्ठव प्रचुर मात्रा में है। सम्भोग और विप्रलम्भ शृङ्गार तथा करुण रस का मनोहर प्रतिपादन है। बुद्ध के उपदेश से प्रतिबुद्ध नन्द की अवस्था एक विरक्त भिक्षु के जैसी है। अश्वघोष ने इसका अत्यन्त सुन्दर भाषा में उसका वर्णन किया है –

न मे प्रियं किंचन नाप्रियं मे
न मेऽनुरोधोऽस्ति कुतो विरोधः।
तयोरभावात् सुखितोऽस्मि सद्यो
हिमातपाभ्यामिव विप्रमुक्तः।।

अश्वघोष की भाषा-शैली में भावों के अनुगमन की अनुपम शक्ति है। गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोधन के आत्मसंयम में भाषा का आरोह-अवरोह प्रेक्षणीय है–

तत्याज शस्त्रं विमर्श शास्त्रं
शमं सिषेवे नियमं विषेहे।
वशीव कञ्चिद् विषयं न भेजे
पितेव सर्वान् विषयान् ददर्श।। (बुद्धचरित 2/52)

अश्वघोष ने कहीं-कहीं अत्यन्त मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। उन्होंने शुद्धोदन की आत्म-शुद्धि का सुन्दर वर्णन किया है कि उसने तीर्थ-जल से शरीर को और गुणरूपी जल से मन को पवित्र किया। उसने वेदोक्त सोमरस का पान किया और हार्दिक सुख की रक्षा की –

सस्नौ शरीरं पवितुं मनश्च
तीर्थाम्बुभिश्चौव गुणाम्बुभिश्च।
वेदोपदिष्टं सममात्मजं च

सोमं पपौ शान्तिसुखं च हार्दम्।। (बुद्धचरित 2/37)

इसमें 'पपौ' पद का श्लिष्ट प्रयोग है– (1) पपौ (पा पाने, परस्मैपद लिट् प्र.) पिया, (2) पपौ (पा रक्षणे, परस्मैपद लिट् प्र) रक्षा की।

बुद्धचरित महाकाव्य में शान्त रस प्रधान है। तपस्या के लिए सिद्धार्थ के दृढ संकल्प में शान्त रस की यह उद्भावना दर्शनीय है –

निवसन् क्वचिदेव वृक्षमूले, विजने वायतने गिरौ वने वा।
विचराम्यपरिग्रहो निराशः, परमार्थाय यथोपपन्नभैक्षः।।(बुद्धचरित 5/19)

अन्य रसों में अश्वघोष ने श्रृङ्गार के दोनों रूपों तथा करुण रस का रमणीय चित्रण किया है। बुद्धचरित के अष्टम सर्ग में अन्तःपुर विलाप के प्रसङ्ग में करुण रस का मार्मिक रूप में उद्भावन हुआ है।

अश्वघोष के काव्यों में अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, वक्रोक्ति और एकावली आदि अलंकार प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। बुद्ध के दर्शनार्थ खिड़कियों से झाँकती हुई स्त्रियों के मुख भवन में सटे हुए कमल के समान प्रतीत हो रहे थे –

वातायनेभ्यस्तु विनिरूसृतानि
परस्परायासितकुण्डलानि
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपंकजानि
सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि।। (बुद्धचरित 3/19)

अश्वघोष ने बुद्धचरित में आश्रम, नदी, वन, वृक्षादि प्राकृतिक वस्तुओं, श्रृङ्गार, करुण, वीर आदि रसों एवं स्वर्ग निर्वाण आदि दृश्यों का मार्मिक वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। बुद्ध के दर्शनार्थ उत्सुक स्त्रियों की अस्त-व्यस्त अवस्था का सुन्दर चित्रण किया गया है –

ताः स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्नताश्च
सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाश्च
वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च
कौतूहलेनानिभृतः परीयुः।। (बुद्धचरित 3/14)

अश्वघोष ने मुख्य रूप से उपजाति और अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है। सर्गान्त श्लोकों में वंशस्थ, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता और शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का प्रयोग है।

1.4.4 जानकीहरणम्

कविपरिचयः जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ।। (राजशेखरस्य)

कुमारदास सिंहलद्वीप के राजा थे ऐसी किंवदन्ती संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। सिंहल के 'पूजावली' नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि राजा मौग्गलान कुमारदास सिंहल में नौ वर्षों तक राज्य करके कालिदास की चिता पर आत्मघात कर मर गया। महावंश के अनुसार कुमारदास की मृत्यु 524ई. में हुई। इस प्रकार सिंहल की परम्परा के अनुसार कवि कुमार और राजा कुमारदास दोनों एक ही व्यक्ति माने जाते हैं परन्तु कतिपय विद्वान् इन दोनों को पृथक् व्यक्ति मानते हैं। काशिका का प्रभाव इनके ग्रन्थ पर विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। अतः इनका समय सप्तम शतक का उत्तरार्ध माना जाता है। किंवदन्ती है कि कुमारदास के निमन्त्रण पर कालिदास सिंहल गये थे जहाँ उनकी समाधि आज भी बनी हुई है।

वर्ण्य-विषय– इनका एक ही ग्रन्थ उपलब्ध होता है जिसका नाम **'जानकीहरणम्'** है। इस काव्य में 20 सर्ग हैं जिनमें रामायण की कथा नाना छन्दों में निबद्ध की गई है। इस महाकाव्य का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है– प्रथम सर्ग में राजा दशरथ, उनकी पत्नियों तथा उनकी राजधानी अयोध्या का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में रावण-चरित्र का वर्णन है। तृतीय सर्ग में राजा दशरथ का जल-विहार, सूर्यास्त, रात्रि एवं प्रातः काल का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में राम का कौशल्या-गर्भ में प्रवेश तथा रामजन्म का विषय वर्णित है। पंचम सर्ग में विश्वामित्र के आश्रम और निकटवर्ती वनभूमि सम्बन्धी इतिहास का आख्यान है। ताड़का एवं सुबाहु के वध का वर्णन किया गया है। षष्ठ सर्ग में राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ जनकपुर पहुँचते हैं। वहाँ पूर्वराग तथा शिव धनुष भंग का वर्णन किया गया है। सप्तम सर्ग में राम और सीता का प्रणय एवं पाणिग्रहण का चित्रण है। अष्टम सर्ग में विवाहोपरान्त राम-सीता की प्रेम-क्रीडा का वर्णन किया गया है। नवम सर्ग में चारों भाइयों के अयोध्या-प्रत्यागमन का वर्णन किया गया है। दशम सर्ग में राम का वनवास के लिए प्रस्थान, भरत का चित्रकूट में राम से मिलन, रावण द्वारा सीताहरण का वर्णन किया गया है। एकादश सर्ग में राम-हनुमान मैत्री, द्वादश सर्ग में सुग्रीव द्वारा सीतान्वेषण, त्रयोदश सर्ग में कपि सेना संग्रह, चतुर्दश सर्ग में सेतु बन्ध, पंचदश सर्ग में अंगद दौत्य कर्म, षोडश सर्ग में राक्षसों का केलि कलाप, सप्तदश सर्ग से बीसवें सर्ग तक राम-रावण युद्ध व राम विजय का वर्णन किया गया है।

शैली– महाकवि कुमारदास ने अपने काव्य का आधार रामकथा को बनाया था। वाल्मीकि एवं कालिदास जैसे महान् कवियों ने रामकथा को अपनी कविता का आश्रय बनाया था, फिर उसी कथा का आश्रय लेकर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करने में सामान्य प्रतिभा का कवि कभी समर्थ नहीं हो सकता। जानकीहरण महाकाव्य निःसन्देह रघुवंश की अपेक्षा प्रयत्नसृष्ट और कृत्रिम है। महाकवि कुमारदास ने इस महाकाव्य को सरस शैली में लिखा है। इस महाकाव्य का पदविन्यास बड़ा ही ललित है, उसमें मन को मोहित करने की क्षमता है। कुमारदास ने अपने महाकाव्य का शुभारम्भ अयोध्या वर्णन से किया है। कवि ने प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक बारह श्लोकों

में अयोध्या का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। जानकीहरण के प्रथम सर्ग का श्लोक है –

> ''आसीदवन्यामतिभोगभारद्दिवोऽवतीर्णा नगरीव दिव्या।
> क्षत्रानलस्थानशभी समृद्धया पुरामयोध्येति पुरा परार्ध्या''।।

अर्थात् अयोध्या नाम की एक नगरी थी जो अतिशय समृद्धि के कारण नगरों में श्रेष्ठ थी। ऐसा लगता था मानो यह नगरी स्वर्ग में रही हो और अपनी समृद्धि के भार के कारण पृथ्वी पर चली आई हो तथा शमी वृक्ष के तुल्य लगती थी जिसके भीतर क्षत्रिय कुल की अग्नि सन्निहित हो।

महाकाव्य के लिए अपेक्षित प्रकृति चित्रण भी इसमें उपलब्ध होता है। वस्तुतः शरद आदि ऋतुओं का वर्णन तथा चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि के वर्णनों में कवि को अच्छी सफलता मिली है, इनमें कहीं-कहीं कालिदास जैसी रम्यता है। प्रभात का इतना सुन्दर मानवीकृत वर्णन दुष्प्राप्य है–

> विरामः शर्वर्या हिमरुचिरवाप्तोऽस्तशिखरं
> किमद्यापि स्वापस्तव मुकुलिताम्भोरुह दृशः।
> इतीवायं भानुः प्रमदवनपर्यन्त सरसीं
> करेणाताम्रेण प्रहरति विबोधाय तरुणः।।

डॉ. वचनदेव कुमार का मत है कि कालिदास के रघुवंश का जानकीहरण में अनुगमन किया गया है, फिर भी उसमें कालिदास की प्रसन्न शैली का अभाव है। कुमारदास ने भारवि के पथ का सजगता से अनुगमन किया है तथा नायक, नायिका, उद्यान क्रीडा, रति-क्रीडा, जल क्रीडा, पान गोष्ठी, सचिव मन्त्रणा, दूत सम्प्रेषण, युद्ध आदि का परम्परानुमोदित वर्णन किया है। इतना ही नहीं उन्होंने भारवि के चित्रबन्ध की परम्परा को आगे बढाते हुए एकाक्षर, द्वयक्षर श्लोकों की रचना की। इससे वे विस्मय-विस्फारित प्रशंसा के अधिकारी तो बनते हैं किन्तु काव्य के सुकुमार मार्ग से हटते हुए दिखाई पड़ते हैं।

कुमारदास कालिदास के काव्यों के बड़े भारी भक्त थे और उन्होंने कालिदास की वैदर्भी शैली का सफलता से अनुकरण किया है। वैदर्भी रीति अपने पूर्ण शृङ्गार के साथ इनके काव्य में विद्यमान है। इनकी कविता स्वभाविकता, सुकुमारता तथा सरसता से भरी हुई है। राजशेखर का उपर्युक्त कथन इस बात का साक्षी है कि कालिदास के रघुवंश के रहते कुमारदास ने अपने 'जानकीहरण' में अपनी सजीव काव्यकला तथा ऊँची कल्पना का प्रदर्शन किया है। राजा दशरथ के बाण से बिद्ध श्रवणकुमार की ये उक्तियाँ कितनी स्वाभाविक, सरस तथा मर्मस्पर्शी हैं –

> एकं त्वया साधयतापि लक्ष्यं, नीतं विनाशं त्रितयं निरागः।
> मच्चक्षुषा कल्पितदृष्टकृत्यौ, वृद्धौ वने मे पितरावहं च।।

अर्थात् हे राजन्, तुमने एक ही लक्ष्य पर बाण छोड़ा, परन्तु निरपराधी तीन मनुष्यों का तुमने नाश कर डाला। मेरी ही आँखों से दृष्टि का काम लेने वाले मेरे बूढे माता, पिता और मैं– ये तीनों एक ही बाण से मारे गये।

कुमारदास विरचित जानकीहरण का प्रधान रस श्रृङ्गार है तथा अन्य रसों का भी यथास्थान समावेश किया गया है। भाषा को अलंकारों से सजाने का प्रयास किया गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास तथा यमक एवं अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा के प्रति विशेष अनुराग है। उन्होंने यमक के पच्चीस भेदों का व्यवहार किया है। जहाँ तक छन्दों का सम्बन्ध है उन्होंने छोटे छन्दों का अधिक प्रयोग किया है। वंशस्थ, अनुष्टुप्, उपजाति, द्रुतविलम्बित एवं पुष्पिताग्रा आदि छन्दों का अधिक प्रयोग किया है।

1.4.5 दशावतारचरितम्

संस्कृत के कवियों में क्षेमेन्द्र का स्थान अद्वितीय है। इन्होंने साहित्य के विभिन्न विषयों पर अपने काव्य लिखे हैं। ये अपने को 'व्यासदास' भी लिखा करते थे। ये काश्मीर के एक धनाढ्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पितामह का नाम 'सिन्धु' तथा पिता का नाम 'प्रकाशेन्द्र' था। इनके पिता बड़े दानी थे। इन्होंने अपने पिता के विषय में लिखा है कि वे मेरु के समान उदार और कल्याणप्रद सम्पत्ति से युक्त थे तथा उनके गृह में असंख्य ब्राह्मणों का भोजन हुआ करता था। क्षेमेन्द्र ने आचार्य अभिनवगुप्त से साहित्य विद्या पढी थी। इस प्रकार कश्मीर के सर्वश्रेष्ठ साहित्य विद्वान् के ये शिष्य थे। इन्होंने साहित्य विद्या में अपनी आचार्यता और निपुणता अच्छी तरह से अभिव्यक्त की है। ये योग्य गुरु के शिष्य थे। ये कश्मीर के राजा अनन्त और कलश के राज्यकाल में विद्यमान थे। इस प्रकार इनका समय एकादश शतक का मध्यकाल समझना चाहिए। इन्होंने अपने ग्रन्थ दशावतारचरित की समाप्ति 41 लौकिकाब्द में की। संभवतः उनका अन्तिम ग्रन्थ यही है। शैव मण्डल में रहकर भी ये परम वैष्णव थे जिसका कारण भागवताचार्य सोमपाद की शिक्षा का प्रभाव था।

इन्होंने अनेक विपुलकाय ग्रन्थों की रचना की है जिसमें प्रधान हैं– (1) रामायणमञ्जरी (2) भारतमञ्जरी (3) बृहत्कथामञ्जरी। ये तीनों ग्रन्थ क्रमशः रामायण, महाभारत और गुणाढ्य की बृहत्कथा के कवित्वमय सारांश हैं। ये तीनों स्वतन्त्र काव्यमय ग्रन्थ हैं। (4) दशावतारचरित– इनका नितान्त प्रौढ महाकाव्य है जिनमें भगवान् विष्णु के दशावतारों का बड़ा ही रोचक तथा विस्तृत वर्णन है। (5) बोधिसत्वावदान-कल्पलता– इसमें बौद्ध जातक की कथाओं का बड़े ही सुन्दर तथा सुबोध पद्यों में वर्णन है। इसके अतिरिक्त इनके लघुकाय ग्रन्थों में (6) कला-विलास (7) चतुर्वर्ग-संग्रह (8) चारुचर्या (9) नीतिकल्पतरू (10) समय-मातृका (11) सेव्य-सेवकोपदेश नितान्त प्रसिद्ध हैं।

वर्ण्य-विषय एवं शैली— दशावतारचरित में क्षेमेन्द्र ने दस सर्गों में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन किया है। इसके अन्त में पाँच श्लोकों में कवि ने स्ववंश वर्णन किया है और अन्त में इसका रचनाकाल लौकिकाब्द 41 दिया है। यह क्षेमेन्द्र की अन्तिम रचना थी। इसमें 1764 पद्य हैं। अवतारों के वर्णन में एक सौ से कम ही पद्य हैं किन्तु वामन, राम, तथा कृष्ण के वर्णन विस्तृत हैं। इस काव्य में कवि ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। विषय के अनुसार प्रसाद गुण का प्रयोग करते हुए भी क्षेमेन्द्र ने इसमें यत्र-तत्र ओजस्विता का आधान किया है। कल्कि अवतार के प्रसंग में कलियुग के कुछ दृश्यों पर क्षेमेन्द्र की दृष्टि गई है —

सप्तवर्षासु नारीषु पुरुषा दशवत्सराः।

तनयाञ्जनयिष्यन्ति ह्रस्वाः स्वल्पबलायुषः।। (दशवतारचरित 10/33)

1.4.6 नैषधीयचरितम्

भारवि और माघ के साथ श्रीहर्ष का नाम संस्कृत के महान् कवियों के रूप में लिया जाता है। इन तीनों के महाकाव्य 'बृहत्त्रयी' के नाम से विशिष्ट रूप में जाने जाते हैं। इनका महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' अलंकृत और रसमयी दोनों पद्धतियों का समन्वय करता है। नैषधीयचरित महाकाव्य के सर्गान्त श्लोकों में श्रीहर्ष ने अपने जीवन परिचय दिया है तथा परिवार से सम्बन्धित सूचनाएँ भी दी हैं इसलिए उनके समय निर्धारण में सरलता होती है। श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्लदेवी था —

श्रीहर्ष कविराज-राजि-मुकुटालङ्कारहीरः सुतं।

श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्। (नैषधीयचरित 1/145)

कन्नौज के राजा जयन्तचन्द्र (प्रचलित नाम जयचन्द) उनके आश्रयदाता थे। श्रीहर्ष के प्रति गौरव-सूचनार्थ राजा उनको दो पान और आसन देते थे। काश्मीर के उद्‌भट् विद्वानों ने इनके ग्रन्थों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कई सर्गों के अन्तिम श्लोकों में इनके अन्य ग्रन्थों के नाम प्राप्य हैं। श्रीहर्ष ने चिन्तामणि मन्त्र के जप के फलस्वरूप सिद्धि और विद्वत्ता प्राप्त की थी। नैषधीयचरित में श्रीहर्ष ने जान-बूझकर यत्र-तत्र घोर पाण्डित्य प्रदर्शन किया है, अतएव अनेक ग्रन्थि या कूट पद्य प्राप्त होते हैं। उन्हें अपने वैदुष्य का दुरभिमान था। उन्होंने अन्य कवियों को अत्यन्त तुच्छ बताया है। 'माऽस्मिन् खलः खेलतु' से ज्ञात होता है कि उनके कटु आलोचक भी विद्यमान थे।

नैषधीयचरित के सर्गान्त पद्यों में श्रीहर्ष की निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है— (1)स्थैर्यविचारप्रकरण (सर्ग4), (2)श्रीविजयप्रशस्ति (3), खणडनखण्डखाद्य (4), गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति (5), अर्णववर्णन (6), छिन्दप्रशस्ति (7), शिवशक्तिसिद्धि (8) तथा

नवसाहसाङ्कचरितचम्पू (9)। इनके केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं– नैषधीयचरित तथा खण्डनखण्डखाद्य।

वर्ण्य-विषय– नैषधीयचरित महाकाव्य में 22 सर्ग हैं। 13वें सर्ग में 56 श्लोक और 19वें सर्ग में 67 श्लोक को छोड़कर शेष सभी सर्गों में 100 से अधिक श्लोक हैं। कई सर्गों में 150 से अधिक श्लोक हैं। सर्ग 17 में 222 श्लोक हैं। इसमें नल-दमयन्ती के प्रणय से लेकर परिणय तक का सांगोपांग वर्णन है। वस्तुतः आकार-प्रकार की दृष्टि से यह बृहत्त्रयी के अन्य काव्यों से (किरातार्जुनीय –15 सर्ग, शिशुपालवध –20 सर्ग) बड़ा है।

नैषधीयचरित महाकाव्य की सर्गानुसार कथा इस प्रकार है– सर्ग1– नल-दमयन्ती का एक-दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर आकृष्ट होना। नल का वन-विहार, एक हंस को पकड़ना, दयार्द्र होकर उसे छोडना, सर्ग2– हंस का कृतज्ञताज्ञापन और दमयन्ती का गुणानुवाद। नल के आग्रह पर हंस का दमयन्ती के पास कुण्डीनपुर जाना, सर्ग3– हंस का दमयन्ती के सामने नल का गुणानुवाद, दमयन्ती की नल के प्रति अनुरक्ति और हंस का नल के पास लौटना, सर्ग4– दमयन्ती की विकलता का भावपूर्ण वर्णन तथा पिता भीमसेन द्वारा स्वयंवर का निर्णय, सर्ग5– इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना, सर्ग6– अदृश्य नल का दमयन्ती के यहाँ पहुँचना और उसका सौन्दर्य देखना, सर्ग7– दमयन्ती का नख-शिख वर्णन, सर्ग8– नल का प्रकट होकर देवों का सन्देश दमयन्ती को सुनाना और चारों देवों में से किसी एक को चुनने का आग्रह करना, सर्ग9– नल-दमयन्ती का वार्तालाप, दमयन्ती का देवों में से किसी को न वरण करने का निश्चय और नल को विवाहार्थ राजी करना, सर्ग10– स्वयंवर-विवरण, दमयन्ती का स्वयंवर वर्णन, सर्ग11 और12– सरस्वती के द्वारा स्वयंवर में आये हुए राजाओं का परिचय दिया जाना, सर्ग13– इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण के अतिरिक्त नल का श्लेषयुक्त पञ्चार्थ-प्रतिपादक श्लोकों में सरस्वती द्वारा वर्णन, सर्ग14– दमयन्ती द्वारा देवताओं की स्तुति, देवताओं का आशीर्वाद, सर्ग15– विवाह का उपक्रम, सर्ग16– विवाह-संस्कार, भोजन तथा नल का अपनी राजधानी लौटना, सर्ग17– देवताओं का लौटना, सर्ग18– नल और दमयन्ती का विहार, सर्ग19– प्रभात काल में वैतालिक द्वारा नल को जगाना, सूर्योदय तथा चन्द्रास्त का वर्णन, सर्ग20– नल और दमयन्ती का प्रेमालाप, सर्ग21– नल द्वारा विष्णु, शिव, वामन आदि देवताओं की प्रार्थना, सर्ग22– सन्ध्या और रात्रि का वर्णन, चन्द्रोदय एवं दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन, कवि-वृत्त वर्णन से ग्रन्थ समाप्ति।

शैली– श्रीहर्ष द्वारा रचित यह काव्य संस्कृत सहित्य की एक अमूल्य धरोहर है। शब्दों का सुन्दर विन्यास तथा भावों का समुचित निवेश सहृदय के मन का हरण कर लेता है। इस महाव्य को बृहत्त्रयी का सर्वोत्कृष्ट रत्न माना जाता है। उन्होंने

अपने महाकाव्य को 'शृङ्गारामृतशीतगुः' शृङ्गाररूपी अमृत के लिए चन्द्रमा कहा है। श्रीहर्ष ने शृङ्गार रस के वर्णन में बहुत सहृदयता दिखाई है। अलंकारों से कवि ने अपनी वाणी को इस प्रकार विभूषित किया है कि उसकी भव्यमूर्ति देखते ही बनती है। अलंकारों में उपमा, रूपक, यमक, अतिशयोक्ति, श्लेष सबका उचित प्रयोग श्रीहर्ष की कविता में पाया जाता है। श्लेष काव्य लिखने में इनकी बड़ी प्रवीणता झलकती है। नैषध में पञ्चनली प्रसिद्ध है, जहाँ कवि ने श्लेष से एक ही पद्य में पाँचों नलों का वर्णन किया है।

श्रीहर्ष की विशेषता है कि उन्होंने पुरातन पद्धति का अन्धानुकरण नहीं किया है। उन्होंने कालिदास से प्रासाद गुण नहीं, अपितु कल्पना, भारवि से चित्रालंकार आदि नहीं, अपितु अर्थगौरव और माघ से कथा शैथिल्य नहीं, अपितु पाण्डित्य प्रदर्शन एवं वाग्वैशारद्य आदि गुणों को अपनाया है। श्रीहर्ष का काव्य सरस, सहृदय एवं व्युत्पन्न पाठकों के लिए शस्य-श्यामल, कुसुमित एवं सुरभित उद्यान है किन्तु पल्लवग्राही, अव्युत्पन्न, अरसिक एवं कोमल बुद्धि के पाठकों के लिए नीरस एवं कण्टकाञ्चित कान्तार है। यदि भारवि की सौर कान्ति को माघ के माघ-मास ने निष्प्रभ कर दिया है तो श्रीहर्ष की वासन्ती सुषमा ने माघ के कम्प को भी निरस्त कर दिया है। अतएव कहा गया है–

तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारवि।

श्रीहर्ष की भाषा में दुरूह से दुरूह भावों को प्रकट करने की असाधारण क्षमता है। भाषा प्राञ्जल, सरस, प्रवाहयुक्त, ध्वन्यात्मक और लयात्मक है। भावों के अनुसार भाषा में उतार-चढाव है। भाषा में प्रासाद, माधुर्य या ओज गुणों का समन्वय है। कहीं-कहीं पर लम्बे समास, अप्रचलित शब्द, दुरूह व्याकरण प्रयोग, श्लिष्ट शब्दावली का बाहुल्य और कर्मवाच्य प्रयोगों की प्रचुरता मिलती है।

भाषा में माधुर्य, लयात्मकता और संगीतात्मकता का एक सुन्दर समन्वय प्रस्तुत है –

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्
दीनदयालुतयाऽवनिपालः।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं
गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय।। (नैषधीयचरित 1/143)

श्रीहर्ष में भावाभिव्यक्ति की अपूर्व शक्ति है। उनकी कल्पना की ऊँची उड़ान भावों को मनोरम और सुकुमार बना देती है। यद्यपि भावों में गाम्भीर्य है किन्तु अभिव्यक्ति के साथ उनका सौन्दर्य निखर उठता है। भवितव्यता और मानव हृदय के मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध को सरल और भावपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया गया है –

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा
यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा।
तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते

जनस्य चित्तेन भृशाऽवशात्मना।। (नैषधीयचरित 1/120)

कामपीड़ित नल को हंस को पकड़ने का कौतुक क्यों हुआ? या नल की सेना को देखकर भी हंस सो क्यों गया? इसी का समाधान यहाँ दिया गया है कि अवश्य होने वाली भवितव्यता में ब्रह्मा की इच्छा जिस ओर दौड़ती है, मनुष्य का पराधीन चित्त भी उसी ओर दौड़ जाता है जैसे विवश तृण आँधी की ओर चला जाता है।

नैषध में शृङ्गार अंगी रस है, वीर, करुण, हास्य आदि अंगभूत रस हैं। नैषध में शृङ्गार के सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का वर्णन है। सम्भोग पक्ष अत्यन्त व्यापक है। अन्य रसों का अल्प मात्रा में यथास्थान प्रयोग है। सर्ग 12 और 13 में स्वयंवर में आये हुए राजाओं के वर्णन में वीर रस का प्रयोग मिलता है तथा 16वें सर्ग में हास्यरस यत्र-तत्र दिखाई देता है। श्रीहर्ष ने 18वें सर्ग में विवाह के पश्चात् नल-दमयन्ती के प्रथम मिलन का विस्तृत वर्णन किया है। प्रथम समागम का एक प्रसङ्ग इस प्रकार है –

वल्ल्भस्य भुजयोः स्मरोत्सवे
दित्सतोः प्रसभमङ्कपालिकाम्।
एककस्चिरमरोधि बालया
तल्पयन्त्रणनिरन्तरालया।।(नैषधीयचरित 18/43)

नैषधीयचरित महाकाव्य में अलंकारों का स्वाभाविक निवेश मिलता है। स्वाभाविक रूप से अलंकारों के प्रयोग के कारण उसकी तुलना कालिदास से की जा सकती है। अलंकारों में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति कवि को अतिप्रिय हैं, उनका प्रयोग उनके काव्य में अधिक दिखाई देता है। अनुप्रास तथा यमक जैसे शब्दालंकार सर्वत्र प्राप्य हैं। श्लेष तो सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने मुख्यतया उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, श्लेष, व्यतिरेक, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

पादान्त यमक का एक उदाहरण इस प्रकार है–

यथासीत् कानने तत्र विनिद्रकलिका लता।
तथा नलच्छलासक्तिविनिद्रकलिकालता।। (नैषधीयचरित 17/218)

श्लेष अलंकार का एक अत्यन्त मनोरम उदाहरण दमयन्ती की यह उक्ति है। इसमें उसके कथन के तीन अर्थ प्रासंगिक रूप से प्रस्तुत होते हैं –

इतीरिता पत्ररथेन तेन, ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी।
चेतो नलङ् कामयते मदीयं, नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम्।। (नैषधीयचरित 3/67)

हंस से दमयन्ती की इस उक्ति में 'चेतो नल.' के तीन अर्थ हैं– (1) चेतरु नलं कामयते मदीयम्– मेरा हृदय नल को चाहता है, (2) चेतः न लङ्काम् अयते मदीयम्– मेरा चित्त धन का लोभी होकर लंका की ओर नहीं जाता है, (३) चेतः अनलं कामयते मदीयम्– नल के न मिलने पर मेरा चित्त अनल को चाहता है, अर्थात् मैं सती हो जाउँगी।

1.4.7 अन्य महाकाव्य

उपर्युक्त महाकाव्यों के अतिरिक्त भारवि प्रणीत 'किरातार्जुनीयम्', भट्टि कवि प्रणीत 'रावणवधम्', माघ प्रणीत 'शिशुपालवधम्', मंखक कवि प्रणीत 'श्रीकण्ठचरितम्' प्रमुख है।

महाभारत की कथा पर आधारित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के 'वनपर्व' से लिया गया है। वीर रस प्रधान इस महाकाव्य में दुर्योधन की नीति, युधिष्ठिर-भीम संवााद, शरद ऋतु वर्णन, हिमालय पर्वत का वर्णन, किरात वेषधारी शिव का अर्जुन से युद्ध, अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति की कथा वर्णित है। इस महाकाव्य में भारवि कवि के अर्थगौरव, कल्पना और सूक्ष्म विचारों का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। उनके काव्य में परिश्रमसाध्य एवं स्वाभाविक दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता हैं। उन्होंने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दीपक और चित्रालंकार का प्रयोग किया है। उन्होंने मुख्यतः 13 छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु उनका प्रिय छन्द वंशस्थ है जिसकी प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने भी की है।

भट्टिकवि प्रणीत 'रावणवध' महाकाव्य 'भट्टिकाव्य' के नाम से भी विश्व विख्यात है। इस महाकाव्य में 22 सर्ग हैं जिनमें राम-जन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। स्वरूप की दृष्टि से यह महाकाव्य चार काण्डों में विभक्त है :

(1) प्रकीर्णकाण्ड (2) अधिकार काण्ड (3) प्रसन्नकाण्ड (4) तिङन्तकाण्ड।

इस महाकाव्य में भट्टि कवि ने व्याकरणामूलक काव्य शैली का प्रयोग किया है। व्याकरण के ज्ञान के लिए यह काव्य दीपतुल्य है।

बृहत्त्रयी में परिगणित माघ कवि प्रणीत शिशुपालवधम् महाकाव्य में 20 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के सभापर्व से ग्रहण किया गया है। इस महाकाव्य में देवर्षि नारद का सन्देश श्रीकृष्ण तक पहुँचाना, कृष्ण का राजसूय यज्ञ में भाग लेना, इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान, रैवतक पर्वत का वर्णन, वन-विहार, जलक्रीडा, श्रीकृष्ण की पूजा, शिशुपाल का कोप, युद्ध तथा शिशुपाल के वध की कथा निबद्ध है। माघ कवि उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य तीनों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा में प्रांजलता और भावों में मनोरम अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

कश्मीरी कवि मंखक ने 'श्रीकण्ठचरितम्' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया। इस महाकाव्य में 25 सर्गों में शिव और त्रिपुरासुर के युद्ध की कथा को निबद्ध किया गया है। इस महाकाव्य की शैली कोमल है तथा पदों में लालित्य विद्यमान है।

1.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! 'संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य' के इस पाठ्यक्रम में आपने महाकाव्य का अध्ययन किया। कविता के उद्भव का बीज हमें वेदों में प्राप्त होता है। महाकाव्य का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों, नाराशंसी ऋचाओं तथा मन्त्रों से हुआ है। रामायण को आदिकाव्य तथा वाल्मीकि को आदिकवि स्वीकार किया गया है। रामायण के पश्चात् द्वितीय महाकाव्य के रूप में महाभारत को स्थान दिया गया है। पाणिनि प्रणीत 'जाम्बवतीविजय' तथा 'पातालविजय', वररुचि प्रणीत 'स्वर्गारोहण', पतंजलि प्रणीत 'महानन्दकाव्य' भी महाकाव्य की श्रेणी में परिगणित हैं।

लौकिक संस्कृत साहित्य में कालिदास प्रणीत 'रघुवंशम्' और 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य का विशेष स्थान है। इन दोनों महाकाव्यों के प्रणयन में महाकवि ने अपनी अलौकिक मेधा शक्ति का परिचय दिया है। अवश्वघोष कवि प्रणीत 28 सर्गों के 'बुद्धचरित' महाकाव्य में बुद्ध के जन्म से लेकर महापरिनिर्वाण तक की कथा का वर्णन है। प्रासाद और माधुर्य गुण से युक्त इस महाकाव्य में दार्शनिक एवं व्याकरणिक पक्षों का सुन्दर प्रयोग दिखाई देता है। कुमारदास प्रणीत 'जानकीहरण' महाकाव्य में रामायण की कथा का वर्णन है। 'रघुवंश' महाकाव्य की अपेक्षा जानकीहरण महाकाव्य अधिक प्रयत्नसृष्ट और कृत्रिम रचना है। क्षेमेन्द्र कवि प्रणीत 'दशावतारचरित' महाकाव्य में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है। श्रीहर्ष प्रणीत 'नैषधीयचरित' महाकाव्य में 22 सर्गों में नल-दमयन्ती की कथा का वर्णन प्राप्त होता है। श्रृंगार रस प्रधान इस महाकाव्य में कवि ने भाषा, भाव और शैली का सुन्दर प्रयोग किया है। इन महाकाव्यों के अतिरिक्त इस इकाई में आपने किरातार्जुनीयम्, रावणवधम्, शिशुपालवधम् आदि महाकाव्यों की विषय-वस्तु एवं शैली का अध्ययन किया।

1.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पद्मश्री डा० कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद. सं० २००६

2. डॉ० एस.के. दे. : संस्कृत पोएटिक्स, भाग 1-2

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित २०१४

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम संस्करण २००६

5. पं.बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्यशास्त्र, खंड 1-2

6. काव्यप्रदीप –– गोविंद ठक्कुर (14वीं शती का अंतभाग)

7. सुधासागर या सुबोधिनी –– भीमसेन दीक्षित (रचनाकाल 1723 ई.)

8. दीपिका –– जयंतभट्ट (रचनाकाल 1294 ई.)

9. काव्यप्रकाशदर्पण –– विश्वनाथ कविराज (14वीं शती)

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. 'रघुवंश' महाकाव्य की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।
2. 'बुद्धचरित' महाकाव्य के शैलीगत वैशिष्ट्य पर टिप्पणी लिखिए।
3. 'नैषधीयचरित' शृंगार रस प्रधान महाकाव्य है। स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 खण्डकाव्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- खण्डकाव्य के स्वरूप से परिचित होंगे।
- खण्डकाव्य के इतिहास से परिचित होंगे।
- खण्डकाव्य का लक्षण जान सकेंगे।

- संस्कृत साहित्य के कुछ प्रमुख खण्डकाव्यों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप को महाकाव्य का परिचय तथा उस का स्वरूप इत्यादि के विषय में जानकारी मिली। संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों का क्या वैशिष्ट्य होता है?, महाकाव्यों की शैली क्या है, और उसमें विविध वर्णनों का किस प्रकार महत्त्व रहता है, इत्यादि विषयों का आपने ज्ञान प्राप्त किया। उसके उपरान्त आप के मन में सहजता से यह भाव उत्पन्न होता है कि क्या संस्कृत साहित्य में काव्य का मतलब केवल महाकाव्य है ?, या अन्य साहित्यों की भाँति संस्कृत में भी गीतिकाव्य तथा खण्डकाव्य भी होते है? संस्कृत साहित्य बहुत समृद्ध है, इसलिये न केवल महाकाव्य, इस साहित्य में खण्डकाव्य भी विद्यमान है। तो इस इकाई में खण्डकाव्यों के विषय में आप को समुचित ज्ञान प्राप्त होगा तथा संस्कृतभाषा में विरचित कुछ प्रसिद्ध खण्डकाव्यों के विषय में भी आप को पूर्णरूप से जानकारी होगी।

2.2 खण्डकाव्य का अभिप्राय

खण्डकाव्य का नाम सुनते ही छात्र प्रायः विह्वल हो जाते हैं कि वास्तव में खण्डकाव्य किसे कहते हैं? लेकिन खण्डप्रबन्ध को स्थूलरूप में एक छोटा काव्य माना जा सकता है। खण्डकाव्य की रचना प्रायः एक ही छन्द में की जाती है और प्रायः उस छन्द का परिवर्तन नहीं किया जाता है। सर्गों की संख्या के अन्त में आगे की कथा का निर्देश नहीं किया जाता है। खण्डप्रबन्ध या खण्डकाव्य 'प्रबन्ध कविता' का दूसरा वर्ग है। खण्डकाव्य का आशय महाकाव्य के किसी विशेष अंश का कथन मात्र नहीं है। न ही यह जीवन के विविध वृत्तियों का बिखरा हुआ रूप है। बल्कि खण्डकाव्य महाकाव्य की तुलना में जीवन के किसी एक दृश्य का समग्र चित्रण होता है। जिसका कलेवर लघु होता है। जिसकी कथावस्तु जीवन के एक पक्ष से सम्बद्ध होती है, वह काव्य खण्डकाव्य है।

खण्डकाव्य साहित्य में प्रबन्धकाव्य का एक रूप है। जीवन की किसी घटना विशेष को लेकर लिखा गया काव्य खण्डकाव्य है। 'खण्डकाव्य' शब्द से ही स्पष्ट होता है कि इसमें मानव जीवन की किसी एक ही घटना की प्रधानता रहती है। जिसमें चरित नायक का जीवन सम्पूर्ण रूप से कवि को प्रभावित नहीं करता। कवि चरित नायक के जीवन की किसी सर्वोत्कृष्ट घटना से प्रभावित होकर जीवन के उस खण्ड विशेष का अपने काव्य में पूर्णतया उद्घाटन करता है।

प्रबन्धात्मकता महाकाव्य एवं खण्डकाव्य दोनों में ही रहती है परन्तु खण्डकाव्य के कथासूत्र में जीवन की अनेकरूपता नहीं होती इसलिए इसका कथानक कहानी की भाँति शीघ्रतापूर्वक अन्त की ओर जाता है। महाकाव्य में प्रमुख कथा के साथ अन्य अनेक प्रासंगिक कथायें भी जुड़ी रहती हैं इसलिए इसका कथानक उपन्यास की भाँति धीरे-धीरे फलागम की ओर अग्रसर

होता है। खण्डाकाव्य में केवल एक प्रमुख कथा रहती है, प्रासंगिक कथाओं को इसमें स्थान नहीं मिलने पाता है।

स्तोत्रात्मक खण्डकाव्यों में पण्डितराज जगन्नाथ के द्वारा रचित अमृतलहरी, सुधालहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणालहरी और गंगालहरी आदि काव्य संस्कृत-जगत् में अति प्रसिद्ध हैं। गीतात्मक खण्डकाव्यों में अनेक काव्य मिलते है। गीतिकाव्य के भेद भी विद्यमान हैं। सधारणतया स्तोत्रकाव्य या भक्तिकाव्य को गीतिकाव्य कहते है।

1.शृंगारमूलक गीतिकाव्य – शृंगारमूलक गीतिकाव्यों का प्रमुख विषय जीवन का भौतिक सुख है। जिसमें स्त्रियों के हाव-भाव, विलास आदि का वर्णन करते हुए उसके उदार चरित्र का चित्रण हुआ है। 'रति' को आधार बनाकर संयोग और वियोग दोनों का चित्रण हुआ हैं। इसमें विविध प्रकार की नायिकाओं का चित्रण हुआ है।

उपर्युक्त दृष्टि से संस्कृत में मेघदूत, शृंगारशतक, अमरुकशतक, चौरपञ्चाशिका(बिल्हण), हॉल की गाथासप्तशती, गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती (12वीं शताब्दी), भल्लट की भल्लटशतक (नवम या दशम शताब्दी), जयदेव का गीतगोविन्द (12वीं शताब्दी), पण्डितराज जगन्नाथ का भामिनीविलास (17वीं शताब्दी) ।

2.स्तोत्रकाव्य या भक्तिकाव्य – स्तोत्र का अर्थ है– आराध्य देव की स्तुति। स्तोत्र साहित्य का उद्‌भव ऋग्वेद से ही होता है। वेदों में उषा, विष्णु, इन्द्र आदि देवों की स्तुति है। भागवत, विष्णु और नारदपुराण में उपास्य देवों की स्तुति प्राप्त होती है। प्रमुख स्तुति काव्य हैं– पुष्पदत्त का शिवमहिम्न स्तोत्र (कुछ 4थी शताब्दी तथा कुछ विद्वान 9वीं शताब्दी स्वीकार करते हैं।), मयूरभट्ट का सूर्यशतक(7वीं शताब्दी) स्रग्धरा छन्द में अपनी ओजस्विता के लिए प्रसिद्ध है। इस छन्द का प्रथम स्तोत्रकाव्य यही है। बाणभट्ट का चण्डीशतक, शंकराचार्य का आनन्दलहरी, परब्रह्मस्तोत्र आदि हैं। इसके अतिरिक्त वैष्णवस्तोत्रों में वेदान्तदेशिक, पादुकासहस्र, वरदराजस्तव आदि हैं।

शैव शाक्त स्तोत्र में कश्मीरी कवियों का विशेष योगदान है। कश्मीरी कवि रत्नाकर नें 50 पद्यों में शिव-पार्वती का वर्णन करने वाली 'वक्रोक्ति पञ्चाशिका' लिखी। आनन्दवर्धन ने देवीशतक (850पद्य) की रचना की। अभिनवगुप्त के गुरू उत्पलदेव नें 'शिवस्तोत्रावली' लिखी। शंकराचार्य की ही रचना 'कनकधारास्तव' है जिसमें उन्होंने लक्ष्मी की स्तुति 22 पद्यों में की है।

जैन-बौद्ध स्तोत्र के रूप में बौद्ध मातृचेट नें 'चतुःशतक और अध्यर्धशतक' नामक दो स्तुतिकाव्य लिखे । जैन कवि सिद्धसेन दिवाकर ने (500 ई०) जैन तीर्थंकरों की स्तुति में 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' लिखा। इसी प्रकार हर्ष ने (700 ई०) बौद्ध धर्म से सम्बद्ध 'सुप्रभातस्तोत्र' व 'अष्टमहाश्रीचौत्यस्तोत्र' लिखे।

जैन कवि सोमेश्वर 900 ई० का 'नीतिवाक्यामृत', ब्राचड अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदन्त (10वीं शताब्दी) ने दो खण्डकाव्य लिखे 'णायकुमारचरिउ (नागकुमारचरित) और 'जेसहरचरिउ' (यशोधनचरित)। जैनकवि नल्लिषेण (11वीं शताब्दी) का पाँच सर्गात्मक 'नागकुमार काव्य' लिखा गया। 17वीं शताब्दी में रामभद्र कवि ने पतंजलिचरित, श्रीकण्ठदीक्षित नें 'गंगावतरण' आठ सर्गों में लिखा। हरिदत्त सूरि नें 18वीं शताब्दी में द्विसन्धान पद्धति पर 'राघवनैषधीय' नामक दो सर्गों का एक काव्य लिखा। इसी प्रकार विभिन्न पत्रिकाओं में स्फुट कविताओं के दर्शन आज भी होते रहते हैं।

गीतिकाव्य –

गीतिकाव्य में गेयात्मकता के साथ-साथ रागात्मकता, ध्वन्यात्मकता और आत्मानुभूति भी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। गीतिकाव्यों में प्रायः मुक्तक पद्य होते हैं। ये पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं। **'पूर्वापरनिक्षेपेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्'** (ध्वन्यालोक) गीतिकाव्य में घनत्व, एकाग्रता और तन्मयता प्रमुखता से केन्द्रीभूत होती है।ऋग्वेद के सरमा-पणि संवाद से लेकर रामायण-महाभारत और परवर्ती काव्यों में इसके प्रसंग प्राप्त होते हैं। रामायण में हनुमान और महाभारत में श्रीकृष्ण का सन्दर्भ प्रायः गीतिकाव्य के सन्दर्भ में दिया जाता है।

2.3 खण्डकाव्य का लक्षण

संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्रीय बिन्दुओं पर अत्यन्त ही गहनता से विचार हुआ है किन्तु इसे काव्य के एक प्रकार के रूप में केवल आचार्य विश्वनाथ और रुद्रट ने ही विवेचित किया है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में खण्डकाव्य की अत्यन्त सीमित परिभाषा दी है– **'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च'** अर्थात् काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला काव्य 'खण्डकाव्य' होता है। इसमें छन्द एक या एक से अधिक हो सकते हैं। रस, अलंकार, प्रकृति-वर्णन तथा चरित्रांकन महाकाव्य के समान होता है। यह अपने आप में पूर्ण तथा निरपेक्ष होता है। महाकाव्य के एक या एक से अधिक सर्गों को सापेक्षता के कारण खण्डकाव्य नहीं कहा जा सकता है। महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग की कथा को अवान्तर कथा की अपेक्षा होती है किन्तु खण्डकाव्य अन्यनिरपेक्ष और स्वतः स्फूर्त होता है एवं इसका विस्तार भी अधिक नहीं होता है। संस्कृत साहित्य में इसकी जो एकमात्र परिभाषा साहित्य दर्पण में उपलब्ध है वह इस प्रकार है–

भाषा विभाषा नियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्।

एकार्थप्रवणैः पद्यैः संधिसाग्रयवर्जितम्।

खंडकाव्यं भवेत् काव्यस्यैक देशानुसारि च।

उक्त परिभाषा के सन्दर्भ में शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त के अन्तर्गत भाग दो में आचार्य त्रिगुणायत ने भी एकदेशीयता का आशय जीवन के एक पक्ष का वर्णन-चित्रण, महाकाव्य के

स्वरूपगत लक्षणों का सीमित रुप में स्वीकृति, और महाकाव्य की तुलना में छोटा होने के अतिरिक्त वर्णन प्रवाह और भावात्मकता की अधिकता को स्वीकार किया है।

प्रथमतः रुद्रट ने प्रबन्धकाव्य को महत् और लघु दो प्रकारों में विवेचित किया है। रुद्रट के अनुसार 'धर्मार्थकाममोक्ष' पुरुषार्थ चतुष्टय' में से किसी एक को लक्षित करके किसी लक्षित रस को ही आधार रूप में स्वीकार करके 'खण्डकाव्य' का आन्तरिक रूप से गठन किया जाता है।

इस प्रकार से रुद्रट के एकदेशीयता का ही परिवर्धित कथन विश्वनाथ ने संक्षेप में साहित्य दर्पण में किया है।

2.4 खण्डकाव्य का इतिहास

खण्डकाव्य का इतिहास लिखने से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि क्या गीतिकाव्य और खण्डकाव्य दोनों परस्पर एक ही हैं? कपिलदेव द्विवेदी का मत है कि– 'शास्त्रीय दृष्टि से गीतिकाव्य को खण्डकाव्य कहा जाता है।' उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' कहते हैं कि 'आधुनिक समीक्षा की दृष्टि से गीतिकाव्य और खण्डकाव्य में भेद होता है।' वहीं वचस्पति गैरोला गीतिकाव्य को स्फुटकाव्य या खण्डकाव्य के एक विशेष प्रकार के रूप में गणना करते हैं।

यहाँ पर खण्डकाव्य के एक विशेष प्रकार की तरह गीतिकाव्य को स्वीकार किया जा रहा है। इस प्रकार स्फुटकाव्य की प्राचीनता प्रथम शताब्दी ईस्वी से प्रारम्भ होती है– बौद्ध मातृचेट ने 100 ईस्वी सन् के लगभग महाराज कनिष्क के लेख को 85 पद्यों में प्रस्तुत किया जिसमें तथागत के सुधारवादी और नैतिक जीवन से सम्बन्धित आदर्शों की रचना की। बौद्ध आर्यसूर(400 ई०) कृत 'परिमितासमास', जानकीपरिणय (7वीं शताब्दी), जैन मुनि धनञ्जय का 'विषापहारस्तोत्र (7वीं शताब्दी)' 39 इन्द्रवज्रा वृत्तों का लघुकाव्य है (इस पर कई टीकाएँ लिखी गईं हैं)।

2.5 कुछ प्रमुख खण्डकाव्यों का परिचय

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत परम्परा में गीतिकाव्य के प्रवर्तक हैं। संस्कृत गीतिकाव्य विधा में मेघदूत और ऋतुसंहार का अद्वितीय स्थान है। इसमें एक में जहाँ बाह्य प्रकृति प्रमुख है तो दूसरे में अन्तःप्रकृति, एक में यौवन का उन्माद है तो दूसरे में यौवन का विषाद, एक में अप्रौढता है तो दूसरे में प्रौढता, एक में कला प्रधान है तो दूसरे में भाव।

2.5.1 ऋतुसंहारम्

ऋतुसंहार महाकवि कालिदास की रचना है। शायद यह काव्य कालिदास की पहली रचना है। महाकवि की अद्भुत काव्य रचना दक्षता इस काव्य में नहीं दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में ऋतुसंहार ही पहली ऐसी रचना है, जिसमें भारतवर्ष में प्राप्त समस्त छः ऋतुओं का स्वतन्त्र रूप से तथा क्रमशः निरूपण किया गया है। आलोचकों का कहना है कि

कवि ने विक्रमादित्य का राज्याश्रय प्राप्त होने के पूर्व ही इसकी रचना की होगी और यह नवयौवन की अवस्था में रचा गया होगा। ऋतुसंहार का सर्वप्रथम म्पादन कलकत्ता से सन् 1792 में 'सर विलियम जोन्स' ने किया था। सन् 1840 में इसका एक अन्य संस्करण पी.फॉन बोलेन द्वारा लातीनी तथा जर्मन पद्यानुवाद सहित प्रकाशित किया गया था। 1906 में :निर्णयसागर प्रेस' से यह रचना मणिराम की संस्कृत टीका के साथ छपी थी, जिसके अब तक अनेक संस्करण हो चुके हैं। लेकिन कुछ विद्वान् ऋतुसंहार को कालिदास की कृति नहीं मानते। इस पक्ष में प्रायः तीन तर्क दिये जाते हैं –

1. ऋतुसंहार में कालिदास की कमनीय शैली नहीं है।

2. इसके उद्धरण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होते।

3. महाविद्वान् मल्लिनाथ ने इस काव्य पर टीका नहीं लिखी है।

ऋतुसंहार में छः सर्गों में छः ऋतुओं का क्रमशः वर्णन 144 श्लोकों में हुआ है। यह कालिदास की अन्य कृतियों के समान परिष्कृत नहीं है। चूँकि इस पर मल्लिनाथ की टीका भी नहीं है अतः कुछ विद्वान् मानते है कि यह कालिदास की कृति ही नहीं है।

संस्कृत साहित्य की केवल यही कृति है जिसमें छः ऋतुओं (ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त) का क्रमशः सम्पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। इसमें ऋतु क्रम में ग्रीष्म की प्रचण्डता का वर्णन कवि इस प्रकार से करते हैं –

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः।

दिनान्तररम्योऽयुपशान्तमन्मयो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये।। ऋतुसंहार– 1/1

ऋतुसंहार की भाषा सरल और स्वाभाविक प्रवाह से पूर्ण है। वसन्त ऋतु के आने पर सभी पदार्थ सुन्दरतर हो जाते हैं –

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं, स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।

सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः, सर्वं प्रियं चारुतरे वसन्ते।। ऋतुसंहार– 6/2

इस प्रकार से ऋतुसंहार में मानव और प्रकृति दोनों का चित्रण उनके उद्दीपक के रूप में हुआ है (3/3)। शरद ऋतु के वर्णन में कल्पना, रूपक अलंकार, भाषा सौष्ठव और संगीतात्मकता का समन्वय है। इस प्रकार से ऋतुसंहार में कवि की प्रतिभा और कल्पनाशक्ति अद्वितीय रूप से प्रकट हुई है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में ऋतुसंहार के उद्धरण आलङ्कारिकों ने इसलिए नहीं दिये कि महाकवि कालिदास के ही अधिक प्रौढ़ उदाहरण विद्यमान थे। मल्लिनाथ ने भी सरल ग्रन्थ होने के कारण इस पर टीका नहीं लिखी होगी। इस प्रकार ये तर्क कमजोर है। वस्तुतः ऋतुसंहार के पर्यालोचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें कालिदासीय प्रतिभा बीज रूप में विद्यमान है।

ऋतुसंहारम् की शैली और काव्य सौन्दर्य –

ऋतुसंहार में कवि कल्पना की मनोहारिता भी आकर्षित करती है तथा कवि का यथार्थबोध भी। पहला ही पद्य ग्रीष्म की प्रखरता तथा सन्ताप के वर्णन से आरम्भ होता है। इसके आगे कवि कहता है कि धूल के बवंडर उठ रहे हैं, कड़ी धूप से धरती दहक रही है, प्रिया के वियोग से दग्ध मानस वाले प्रवासी तो इस दृश्य को देख तक नहीं पा रहे हैं। प्यास से चटकते कण्ठ वाले मृग एक जंगल से दूसरे जंगल की ओर भाग रहे हैं।

ग्रीष्म ने वन के प्राणियों को ऐसा आकुल कर दिया है कि साँप मयूर के पिच्छ के नीचे धूप से बचने को आ बैठा है और मयूर को उसकी खबर नहीं। प्यास से सिंह का मृगया का उद्यम ठंडा पड़ गया है, जीभ लटकाये हाँफता हुआ वह पास से निकलते हिरणों पर भी आक्रमण नहीं कर रहा। तृषा से व्याकुल हाथियों ने भी सिंह से भय खाना छोड़ दिया है। शूकर भद्रमुस्ता से युक्त सूखते कीचड़ मात्र बचे सरोवर की धरती में धँसे से जा रहे हैं। ग्रीष्मवर्णन के इस पहले सर्ग में वनप्रान्त की भीषणता का वास्तविक चित्र कवि ने अत्यन्त विशद रूप में अंकित कर दिया है। दावाग्नि से जल कर काष्ठ मात्र बचे वृक्ष, सूखते पत्तों का जहाँ-तहाँ ढेर और सूखे हुए सरोवर इन सबका विस्तार चित्त को भयभीत कर डालता है। दावाग्नि का वर्णन भी कालिदास ने इसी यथार्थ दृष्टि से किया है।

2.5.2 मेघदूतम्

लोकप्रियता और प्रसिद्धि की दृष्टि से मेघदूत का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। इस पर लिखी गई टीकाएँ ही इस बात का सबसे बडा प्रमाण हैं। प्रौढता और परिष्करण की दृष्टि से यह सर्वोत्तम है। इसमें कल्पना-प्रौढता, कोमलकान्त पदावली का अद्‌भुत समन्वय है। विद्वान् मेघदूत को गीतिकाव्य का उज्ज्वल माणिक्य कहते हैं।

मेघदूत में कुल 115 पद्य हैं। यह पूर्वमेघ और उत्तरमेघ में विभाजित है। पूर्वमेघ में 63 श्लोक और उत्तरमेघ में 52 पद्य हैं। मल्लिनाथ ने अपनी टीका में ६ प्रक्षिप्त श्लोक मानते हुए 121 श्लोक स्वीकार किये हैं। अलग अलग टीकाओं संस्करणों में श्लोक संख्या भिन्न-भिन्न है।

मेघदूत में कवि ने कल्पना की है कि – अलकापुरी का निवासी एक यक्ष अपनी प्रेयसी से अतिशय प्रेम करता है। यक्ष के कर्तव्यच्युत होने के कारण पुरी के स्वामी कुबेर ने यक्ष को अपनी पत्नी से दूर रहने का शाप दिया। इस शाप की अवधि एक वर्ष की थी। यक्ष यह शाप रामागिरि आश्रम में व्यतीत करता है। वह आठ महीने पूरा कर लेने के बाद वर्षाकाल आने पर विरह-वेदना से पीड़ित होकर मेघ से अपनी विरह-व्यथा अपनी प्रियतमा तक पहुँचाने के लिए अनुनय-विनय करता है। काव्य के पूर्व भाग में मेघ का यथोचित स्वागत करके उसने रामागिरि से अलकापुरी तक का मार्ग बतलाया जिसमें माल प्रदेश (मालवा), आम्रकूट (अमरकण्टक), नर्मदा नदी, विदिशा नगरी, निर्विन्ध्या नदी, उज्जयिनी, महाकाल मन्दिर, शिप्रा

आदि से होते हुए कैलाश और मानसरोवर आदि का वर्णन अत्यन्त रोचक एवं प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

उत्तरमेघ में अलकापुरी की भव्यता का वर्णन है जिसके विषय में बताते हुए यक्ष कहता है कि यहाँ पर सुख, वैभव, आनन्द और विलास की प्रचुरता सदैव रहती है। यहीं पर कुबेर का निवास-स्थान है। यहीं पर उसकी (यक्ष की) प्रियतमा विरह व्याकुल दिखाई देगी। जो विरह से खिन्न, मलिन, उदास, कृश, तुषाराहत कमलिनी के तुल्य हो गई होगी। यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ! तुम प्रियतमा से कहना कि वह उदास न हो, दुःख के चार मास भी शीघ्र बीत जायेंगे। शीघ्र ही सुख का आगमन होगा। हम सबका शीघ्र पुनर्मिलन होगा।

मेघदूतम् की शैली और काव्य सौन्दर्य –

मेघदूत में भावों की गरिमा, विचारों की महिमा, कल्पना की कमनीयता, हृदय की विशदता, भाषा की प्राञ्जल्ता, अनुभूतियों की संवेदनशीलता, भाषा की मधुरिमा विप्रलम्भ शृंगार की सात्विकता एवं सघनता, अलंकारों की इन्द्रधनुषी छटा और मन्दाक्रान्ता की मन्थर गति नवपरिधाना का सा लावण्य है। मेघदूत की शैली वैदर्भी है। इसमें सरस पदावली और प्रासादिकता का समन्वय है।

मेघदूत के भावपक्ष पर ध्यान केन्द्रित करने पर **'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'** सिद्ध हो जाता है। इस पद्य में निर्विन्ध्या नदी को मेघ की प्रेयसी बताया गया है(1/28)– **'वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः'**– उसकी मेखला पक्षियों के कलरव के रूप में ध्वनित हो रही है। भँवर के रूप में नाभि दिखाई दे रही है। गति धीमी हो रही है। उसके ऊपर उतरकर मेघ रस ले लेगा क्योंकि स्त्रियों के हाव-भाव ही प्रेमाभिव्यक्ति के पूर्वरूप होते हैं।

भावों की मार्मिकता की दृष्टि से उत्तरमेघ अत्यन्त ही विशिष्ट है। इसमें यक्ष और यक्षिणी दोनों की विरह-दशा का चित्रण प्राप्त होता है। यक्षप्रिया की अवस्था अवश्य ही मेघ को रुदन करने पर विवश कर देने वाली है।

मेघदूत में प्रकृति का चित्रण बाह्य प्रकृति के रूप में न होकर मानवीय अनुभूतियों से सम्पन्न हुआ है। जो अपने हाव-भाव से सभी रसिकों को आकृष्ट करने की क्षमता रखता है। इसमें मेघ एक ऐसे दूत के रूप में प्रस्तुत हुआ है जो कर्मनिष्ठ, विश्वसनीय, स्नेहपूर्ण, अनुज रसिक की तरह है। इसमें प्रकृति कई बार सुख-दुःख के भाव से परिपूर्ण होकर हमारे सामने प्रस्तुत हुई है इसीलिए जब मेघ का मिलन पर्वत से बहुत दिन बाद होता है तो वह उष्ण अश्रु जल छोड़कर अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। इसमें मेघ और पर्वत का सौहार्द्र मनोरम बन पडा है।

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य।

स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्।। (मेघदूत 1/12)

मेघदूत में कालिदास ने मेघ और नदियों का नायक-नायिका के रूप में चित्रण किया है। मेघ नदियों के हाव-भाव पर आकर्षित हुआ है। उनसे प्रेम करता है, रमण करता है और उनकी कामना पूर्ण करता है। सिन्धु नदी जब वियोग में कृश हो गयी है तो उसे प्रेमजल देकर सन्तुष्ट करता है।

उत्तर मेघ में भी अलका नगरी की प्राकृतिक सुषमा के प्रसंग में सदा सभी ऋतुओं के सुलभ होने की कल्पना कवि ने की है। जिसमें षड्ऋतुओं के पदार्थों का उपयोग वहाँ की सुन्दरियाँ करती हैं। अलका के सुन्दरियों के हाथ में शरद ऋतु का लीलाकमल, केशों में ताजे कुन्द के फूलों का ग्रन्थन, मुख पर शिशिर ऋतु में खिलने वाले लोध्र पुष्प का पराग लगाने से पाण्डुता, जूडों में बसन्त के कुर्बक पुष्प की सजावट, कानों में ग्रीष्मकालीन शिरीष का पुष्प और माँग में वर्षा कालीन कदम्ब का पुष्प सदैव सुशोभित होता है।

मेघदूत छन्द के चयन, भाषा का सौष्ठव एवं पद लालित्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का अदभुत् रत्न है। सरलता और स्वाभाविकता के साथ-साथ ध्वन्यात्मकता इस गीतिकाव्य में प्राण का संचार करती है। शब्दों का विन्यास ऐसा है जैसे पद्य लुढकते हुए से आगे बढ रहे हों। भाषा की सहजता इस पद्य में देखी जा सकती है–

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां।

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।। (मेघदूत 1/5)

इसमें उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का समुचित प्रयोग है। उपमा की प्रचुरता विद्यमान है।

2.5.3 नीतिशतकम्

संस्कृत नीति काव्य के इतिहास में कविवर भर्तृहरि का स्थान जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही उनकी स्थिति विवादास्पद है। जनश्रुति के आधार पर वे महाराज विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। परम्परानुसार ये ही राज्य सिंहासन पर आसीन होने के अधिकारी थे किन्तु अपनी रानी पिंगला द्वारा विश्वासघात किये जाने के कारण संसार से विरक्त हो गये और राज्यसिंहासन का दायित्व अपने भाई विक्रमादित्य को सौंप दिया। कतिपय विद्वान् कवि भर्तृहरि को प्रसिद्ध वैयाकरण भर्तृहरि से अभिन्न मानते हैं, जिन्होंने 'वाक्यपदीय' की रचना की थी और चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार जिनकी मृत्यु 650 ई. में हुई थी।

नीतिशतकम् में मनुस्मृति और महाभारत की गम्भीर नैतिकता महाकवि कालिदास की सी प्रतिभा के साथ प्रस्फुटित हुई है। इस ग्रन्थ में कवि द्वारा विद्या, वीरता, साहस, मैत्री, उदारता, परोपकार परायणता जैसी उदार वृत्तियों का बडी सरस पदावली में वर्णन किया गया है।

नीतिशतक व्यावहारिक जीवन की सम-विषम परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण करता है। इसमें मूर्ख निन्दा, सज्जनों की प्रशंसा, परोपकार, धैर्य, दैव तथा कर्म की महिमा से सम्बद्ध अनेक

पद्य हैं। कुछ विद्वानों ने नीतिशतक को इन विषयों से सम्बद्ध पद्धतियों में विभक्त करके पद्यों का क्रम रखा है।

संस्कृत विद्वान् और टीकाकार बुधेन्द्र ने नीतिशतक को नीचे दिये हुए भागों में विभक्त किया है, जिन्हें 'पद्धति' कहा गया है –

- मूर्खपद्धति
- विद्वत्पद्धति
- मान-शौर्य-पद्धति
- अर्थपद्धति
- दुर्जनपद्धति
- सुजनपद्धति
- परोपकारपद्धति
- धैर्यपद्धति
- दैवपद्धति
- कर्मपद्धति

परोपकार पद्धति से संकलित निम्नांकित पद्य में सानुप्रास पदावली ने लालित्य भाव की सुन्दरता को अत्यधिक बढा दिया है –

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा–

स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः पूरयन्तः।

परगुण-परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदि विकसन्तरू सन्ति सन्तः कियन्तः।।(नीतिशतकम् – 79)

इस ग्रन्थ में जिन नीति सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, वे संसार की किसी भी जाति अथवा धर्म के लिए भूषण स्वरूप हैं। नीतिशतक के प्रसिद्ध पदों का प्रचार प्रायरू समस्त भारतवर्ष में है। इसकी कतिपय सूकितयाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं –

विभूषणं मौनमपण्डितानाम्। (मूर्खों का आभूषण चुप रहना ही है।)

सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्। (सत्संगति मनुष्यों के लिए क्या नहीं करती?)

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते। (सभी गुण धन का ही आश्रय पाकर रहते हैं)

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्। (कार्यार्थी मनस्वी दुरूख एवं सुख को नहीं गिनते हैं)

न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः। (धैर्यवान् मनुष्य न्याय के मार्ग से एक पद भी विचलित नहीं होते)

2.5.4 शृंगारशतकम्

शृंगारशतक में महाकवि भर्तृहरि ने शृंगार का चटकीला चित्रण किया है, इस शतक में कवि ने स्त्रयों के हाव-भाव, प्रकार व उनके शारीरिक सौष्ठव के बारे में विस्तार से चर्चा की है। वह मङ्गल श्लोक में लिखते है –

शम्भुस्वयम्भुहरयोहरिणेक्षणानां

येनाक्रियन्तसततंगृहकर्मदासाः।

वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय

तस्मैनमोभगवतेमकरध्वजाय।। 1।।

वे बताते हैं कि स्त्री किस प्रकार मनुष्य के संसार बन्धन का कारण है –

स्मितेनभावेन च लज्जयाभिया

पराङ्ग्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः।

वचोभिरीर्ष्याकलहेनलीलया

समस्तभावैःखलुबन्धनंस्त्रियः।।2।।

इसमें स्त्रीप्रशंसा, सम्भोगवर्णन, कामनीगर्हणा, सुविरक्त तथा दुर्विरक्त पद्धति तथा ऋतुवर्णन इत्यादि विषय विस्तार के साथ निरूपित हैं। स्त्री-पुरुष पर प्रभावशाली शृंगार एवं स्त्रियों के हाव-भाव का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके कुछ पद्यों में ऋतुओं का भी वर्णन है। कतिपय वर्णन यौवन के विकारों से भी प्रभावित न होने वाले व्यक्तियों के वर्णन से सम्बद्ध हैं, जैसे, '**धन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे यौवने**', तो कहीं-कहीं स्त्रियों की निन्दा भी की गयी है जैसे –

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादकारिणी।

स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम्।।

ऋतुओं का वर्णन कामोद्दीपन की दृष्टि से किया गया है। जैसे वसन्त की उद्दीपकता पर कवि का दृष्टिकोण इस प्रकार है–

सहकार-कुसुम-केसर निकर-भरामोद मूर्च्छित-दिगन्ते।

मधुर-मधु-विधुर-मधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा।।

जिस समय आम की मञ्जरियों के केसर-समूह की अतिशय सुगन्ध से सभी दिशाएँ मूर्च्छित हो जाती हैं तथा मधुर मधु के आस्वादन से सभी भ्रमर उन्मत्त अर्थात विधुर अनियन्त्रित हो जाते हैं, वैसे ही वसन्त काल में किस व्यक्ति में उत्कण्ठा (कामोद्दीपन) नहीं होती ? अर्थात् सब में होती है।

इस शृंगारशतक के अनेक पद्यों में वेश्याओं की निन्दा करते हुए ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा की गयी है, जो स्त्रियों के रूप जाल में नहीं फँसते हैं। इस प्रकार शृंगार की मनोरमता में कवि ने नैतिक आदर्श की पवित्र धारा प्रवाहित की है।

2.5.5 वैराग्यशतकम्

भारतीय मुक्तक सुभाषितों की शतक-परम्परा में भर्तृहरि के नीति, शृंगार और वैराग्य शतक अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय हैं। कोई ऐसा पण्डित न होगा जिसे भर्तृहरि के इन शतकों ने आकर्षित न किया हो। भाषा की सरलता, भावों की तरलता तथा चमत्कार की विरलता भर्तृहरि-शतकों के पद-पद में पायी जाती है।

भर्तृहरि के नाम से बहुविध विपुल साहित्य प्राप्त होता है। ये ग्रन्थ हैं– महाभाष्य की त्रिपदी दीपिका, वाक्यप्रदीय, शब्दधातु समीक्षा नीति, शृंगार और वैराग्यशतक। इनके अतिरिक्त अन्य भी भर्तृहरि के रचित ग्रन्थ हैं। जो पूर्णतः विवादास्पद हैं। परन्तु साधरणतया भर्तृहरि का नाम लेते ही उनके शतकत्रय का बोध होता है जो इन शतकों की लोकप्रियता का प्रमाण है। 7वीं सदी के चीनी यात्री इत्सिंग इन शतकों की चर्चा तो नहीं करता है परन्तु जब वह महाभष्य कृत भर्तृहरि की टीका की चर्चा करता है तो कहता है कि यह मानवीय जीवन के सिद्धान्तों की चर्चा करता है तो जाने अनजाने में वह शतक के सिद्धान्तों का भी समाहार कर लेता है।

सुभाषितों में भर्तृहरि के सुभाषित अग्रणी है। एक-एक श्लोक में जगत् और जीवन का सार भरा है। कवि कहता है कि जानकार लोग ईर्ष्यालू है, प्रभावशाली लोग गर्व से भरे है। अन्य अबोध के मारे हैं। बेचारे सुभाषित अंग में ही जीर्ण हो गया।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।

अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्।।

वैराग्यशतक के निम्न पद्य में वृद्धावस्था की शोचनीयता का चित्रण कितना स्वाभाविक है–

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि

दृष्टिर्नक्ष्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।

वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते।

हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते।।

शरीर सिकुड़ गया, चाल ढीली पड गयी है और दाँत भी गिर गये। आँखों की रोशनी जा रही है, बहरापन बढ रहा है और मुँह से लार टपकने लगा है। बन्धुजन बात नहीं सुनते हैं, पत्नी भी सेवा नहीं करती, यहाँ तक कि पुत्र भी शत्रु जैसा आचरण करने लगता है। मनुष्य की बुढौती बहुत ही दुःखदायी है।

भर्तृहरि की शैली–

भर्तृहरि की भाषा सरल और सरस वैदर्भी का उत्तम उदाहरण है। शार्दूलविक्रीडित कवि का प्रिय छन्द है। इसके अतिरिक्त भी विविध छन्दों का सहज उपयोग किया गया है। अलंकार स्वाभाविक रूप से उसमें आ गये हैं। भाषा और अलंकारों की स्वाभाविकता तथा विचारों की सटीक, सहज अभिव्यक्ति के कारण भर्तृहरि विक्रमादित्य के आरम्भ के युग में सरलता से पहुँच जाते हैं। जीवन और जगत् को जीतना भर्तृहरि ने अपने शतकों में व्यक्त किया। वह परवर्ती कवियों के लिए उदाहरण बन गये हैं। यही कारण है कि धर्म से परे जैन साधुओं में भी वैराग्यशतक पढने-पढाने की परम्परा है।

सातवीं सदी का चीनी यात्री इत्सिंग भर्तृहरि को गृहस्थ और संन्यास के मध्य सात बार आवागमन करता बताता है। उसने इसे बौद्ध विद्वान् बताया है परन्तु उसका साहित्य उसे परम शैव ही सिद्ध करता है। भर्तृहरि का साहित्य जीवन की विरूपताओं पर सतत कटाक्ष करता है। भर्तृहरि ने बहुधा अपनी बात कहने के लिए मैं या अस्मत् शैली अपनाई है। इसलिए कई बार उनके श्लोकों में आत्मकथ्य का आभास लगता है।

भर्तृहरि के लोकप्रिय श्लोकों का परवर्ती काव्यशास्त्रकारों ने पर्याप्त उपयोग किया है। धनिक ने दशरूपक की टीका में वाक्यपदीय के साथ शतकों को भर्तृहरि के नाम से विविध सन्दर्भों में उद्धृत किया है। धृति के उदाहरणा (4/92) में कहा गया है–

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या

सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।

स हि भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।।

इसी प्रकार श्लोक 112 की टीका में **"प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः"**– आदि श्लोक भी उद्धृत किया गया है, जो नायक के स्थिर गुण की पुष्टि करता है। मम्मट ने भी अपने काव्यप्रकाश में "मात्सर्यमुत्सार्य (श्लोक 84) आदि श्लोक को शान्त तथा श्रृंगार के संशयरूप गुणीभूतव्यंग्य और इसी संशय के कारण दोष में उदाहृत किया है। काव्यप्रकाश के साथ ही साहित्यदर्पण में 'शशी दिवसधूसरो' आदि श्लोक समुच्चय अलंकार के उदाहरण के रूप में उद्धृत है। इन श्लोकों के अलावा **"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः"** आदि श्लोक के प्रत्येक चरण में वयमेव की आकृति से नवीनता आ गयी है। शतक तो अनेक रचे गये पर भर्तृहरि तक उनमें से कोई शतक पहुँच नहीं पाया।

2.5.6 अमरुकशतकम्

अमरुक संस्कृत गीतिकाव्यपरम्परा में कालिदास के पश्चात् सर्वाधिक स्पृहणीय कवि हैं। मुक्तक काव्य परम्परा में श्रृंगार और प्रेम के कवि के रूप में उन्होंने अनन्य-सामान्य प्रशंसा तथा प्रसिद्धि पायी। डी. डी. कोसाम्बी जैसे विद्वान् तो अमरुक नामक किसी कवि के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हैं। पर कोसम्बी ने इस तथ्य को अनदेखा कर दिया है कि विद्याधर के बहुत पहले आनन्दवर्धन जैसे संस्कृत काव्यशास्त्र के महान् आचार्य की दृष्टि में अमरुक मुक्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। अतएव न अमरुक के अस्तित्व को अस्वीकार किया जा सकता है और न अमरुक शतक के सन्दर्भ में उनके कर्तृत्व को। अमरुक कवि की एक ही रचना मिलती है। अमरुकशतक की विभिन्न प्राचीन प्रतियों में 90 से 115 तक पद्य प्राप्त होते हैं। जिनमें से केवल 51 पद्य ही सर्वश्रेष्ठ है। साइमन तथा आफ्रेट इन दो पाश्चात्य विद्वानों ने छन्द को प्रमाण मानकर अमरुक के वास्तविक कर्तृत्व का परीक्षण करना चाहा है। आफ्रेट ने यहाँ तक कहा है कि अमरुक ने अपने पद्य केवल शार्दूलविक्रीडित छन्द में ही लिखे थे और शेष छन्दों में लिखे गये पद्य वस्तुतः अमरुक के नहीं है। परञ्च आफ्रेट के इस वचन में कोई तर्क नहीं है। टीकाकार अर्जुनवर्मदेव ने कुल 102 पद्यों पर टीका की है तथा निर्णयसागर संस्करण में इन पद्यों के अतिरिक्त पद्य अलग से संगृहीत किये गये हैं, जिनके अमरुककृत होने की सम्भावना प्रकट की जाती रही है।

अमरुकशतक की प्राचीन प्रतियों तथा उपलब्ध संस्करणों के आधार पर उसके दो संस्करण प्राचीन काल से प्रचलित प्रतीत होते हैं। एक लगभग 114 पद्यों का बृहत् संस्करण है, जिसका प्रचार 1000 ई० के आसपास अवन्तिदेश में अधिक रहा है। अमरुक का एक दूसरा संस्करण आन्ध्रप्रदेश में प्रचलित रहा होगा, जिसका अपनी टीकाओं में उपयोग रुद्रमदेव, रविचन्द्र तथा वेमभूपाल जैसे टीकाकारों ने किया है।

रविचन्द्र ने अमरुकशतक के विषय में शंकराचार्यसम्बद्ध किंवदन्ती को प्रमाण मानते हुए प्रत्येक पद्य की द्विविध व्याख्या की है। श्रृंगारपरक, वैराग्यपरक वेमभूपाल आदि टीकाकारों ने अमरुक

के काव्य को कामसूत्र या नायिका-लक्षणों के उदाहरण के रूप में ही प्रस्तुत किया है। वस्तुतः अमरुक का रसावेशवैशद्य सौन्दर्यनिधानमत काव्य किसी शास्त्र को सामने रखकर उसकी काव्यात्मक टीका में नहीं रचा गया है। वह तो जीवन के सहज अनुभव से उपजा है।

अमरुक प्रणय-जीवन के कुशल चितेरे हैं। उनके सारे मुक्तकों का वर्ण्य-विषय दाम्पत्य कहा जा सकता है। दम्पती के जीवन में भावनात्मक स्तर पर उठते घात-प्रत्याघात, प्रणय के अपूर्व उल्लास, मान, सम्बन्धों में बिखराव या विघटन और उपालम्भ की स्थितियों के उन्होंने गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि के साथ अन्तरंग चित्र उकेरे हैं। वे दम्पती के बीच सम्बन्धों में आते उतार-चढाव की बाहरी पड़ताल करते हुए भारतीय गृहस्थ जीवन और दाम्पत्य की अखण्ड मांगलिकता का दिग्दर्शन कराते हैं–

दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता दृष्टैव नैन्दीवरैः

पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजाव्यादिभिः

दत्तः स्वेदमुचा पयोधरभरेणाधौ न कुम्भाम्भस-

स्स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मंगलम्।।

प्रोषितभर्तृका का पति परदेश से लौट आया है। वह बावली इतनी प्रतीक्षा के बाद उसे आया देख हड़बड़ी में कोई मंगल नहीं रच पाती पर उसे नहीं पता कि मांगलिक उपकरणों की टीमटाम के बिना ही उसने सहज रूप में स्वतः कितना उत्तम मंगल उपस्थित कर दिया है। अपनी दृष्टि के वितान से ही उसने बन्दनवार खींच दी कमल नहीं हुए तो क्या? उसने अपनी मुस्कानों से ही फूल बिखेर दिये, कुन्द और जाति के फूल भले न हों। पसीने से तरबतर अपने पयोधरों से ही उसने प्रिय को अर्घ्य दिया, मंगल कलश से नहीं। इस प्रकार प्रिय के प्रवेश करते समय उसने अपने आप अपने अवयवों से सारी मांगलिक सामग्री प्रस्तुत कर दी।

अमरुक की शैली–

अमरुक प्रेम की विह्वलता और अनन्यता के चित्रण में अनन्य ही हैं। आकांक्षाएँ और बावली हरकतें यहाँ हमें भावनाओं की गहराई में उतारती चलती हैं। प्रेमी का मन और देह तर्क से परिचालित नहीं होता–

देशैरन्तरिता शतैश्च सरितामुर्वीभृतां काननै

र्यत्नेनापि न याति लोचनपथं कान्तेति जानन्नपि।

उद्ग्रीवश्चरणार्धरुद्धवसुधः प्रोन्मृज्य सास्रे दृशौ

तामाशां पथिकस्त्वथापि किमपि ध्यायन् पुनर्वीक्षते।।

बटोही जानता है वह अपनी प्रिया से बहुत दूर है। बीच में कई देशों, सैकड़ों नदियों, पर्वतों और काननों का व्यवधान है। किसी भी तरह से वह प्रिया का दर्शन नहीं कर सकता फिर भी गुनताडे में गर्दन ऊपर उठा-उठा कर और पंजों के बल उचक-उचक कर अंसुवाई हुई आँखें पोछता हुआ वह फिर उसी दिशा में ताकता है जिस ओर प्रिया की बस्ती छूट गई है।

अमरुक की पदावली, भाषा और मुहावरे उनकी भावाभिव्यक्ति में सहज रूप से समवेत होकर निकलते हैं। अमरुक उन प्रतिभाशाली कवियों में से हैं जिनकी रचना में वस्तु और रूप के बीच कहीं फांक दिखायी ही नहीं देती।

अमरुक के एक-एक शब्द से ही नहीं, शब्द के खण्ड-खण्ड (प्रकृति-प्रत्यय) से भी बहुत कुछ कह जाने की क्षमता पर पुराने आचार्यों ने विचार किया है। काव्यप्रकाशकार ने प्रकृति-प्रत्यय आदि की व्यञ्जकता दिखाने के लिए अमरुक का यह पद्य उद्धृत किया है–

लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो
निराहाराः सख्यस्सततरुदितोच्छूननयनाः।
परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्जरशुकै
स्तवावस्था चेयं विसृज कठिने मानमधुना।।

यहाँ "लिखन्नास्ते" में लिख् धातु में शतृप्रत्यय तथा आस्ते क्रिया का प्रयोग सूचित करता है कि प्रियतम बड़ी देर से बाहर बैठा है और जब तक नायिका मान नहीं जायेगी, यों ही बैठा रहेगा। भूमि पर लिख रहा है। यह बताने के लिये 'भूमौ' यह सप्तमी विभक्ति का प्रयोग न कर द्वितीयान्त का प्रयोग किया है। नायक के अस्त-व्यस्त दशा का प्रकटन करने वाला है। कुल मिलाकर महाकवि अमरुक संस्कृत कवियों में मुक्तक की कसौटी पर कदाचित् सबसे अधिक खरे उतरते हैं।

2.5.7 गीतगोविन्द

जयदेव संस्कृत साहित्य में सुप्रसिद्ध हैं। संस्कृत साहित्य में जयदेव नाम के अनेक कवि हुए हैं। उन कवियों में से दो सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं– एक 'प्रसन्नराघव' और चन्द्रालोक के कर्ता जयदेव और द्वितीय गीतगोविन्दकार जयदेव। गीतगोविन्दकार जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन की राजसभा के अनर्घ रत्न थे। अतः विद्वानों ने जयदेव का समय 1100 ई. के लगभग माना है। संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रन्थों से पता चलता है कि इनका जन्म बंगाल के केन्दुबिल्व (केन्दुली, जि. वीरभूम) ग्राम में हुआ था लेकिन यह विषय इतनी सरलता के साथ समाप्त नहीं हुआ क्योंकि ओडिशा के विद्वान् एवं कुछ बुद्धिजीवि दावा करते हैं कि कवि जयदेव ओडिशा के केन्दुबिल्व नामक ग्राम में, जो कि भुवनेश्वर के निकट में उपस्थित है, जयदेव का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रामादेवी या राधा

देवी था। उनका विवाह पद्मावती नाम की दाक्षिणात्य कन्या से हुआ था, और उनकी प्रेरणा से ही जयदेव कवि बन गये। वे लिखते हैं, ''**पद्मावती चरणचारणचक्रवर्ती**''।

जयदेव का सम्पूर्ण जीवन भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति में तल्लीन था। 'गीतगोविन्द' संस्कृत भाषा का श्रेष्ठ गीतिकाव्य है। यह सर्वथा मौलिक कृति है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न काव्य विधा के अन्तर्गत रखने का प्रयास किया है। विलियम जोन्स इसे ग्राम्य नाट्य,, पिशेल इसे संगीत रूपक तथा फॉन श्रोएडर इसे परिष्कृत यात्रा कहना पसन्द करते हैं।

वर्ण्य-विषय – वस्तुतः 'गीतगोविन्द' गीतिकाव्य का मुकुटमणि है। इसमें 12 सर्ग हैं जो पुनः प्रबन्धों (कुल 24 प्रबन्ध) में विभक्त हैं। इसमें मुख्य प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण एवं राधा का प्रेम है। इसका प्रत्येक सर्ग गीतों से युक्त है तथा सर्ग की कथा के सूत्र को निर्देश करने वाले वर्णनात्मक पद्य भी दिये गये हैं। यह काव्य काव्य काव्य तालय से समन्वित है तथा इसमें गेयता पूर्ण मात्रा में है। जयदेव ने लिखा है– ''यदि हरि स्मरण में मन रमता हो या विलास कथा के प्रति कौतूहल हो– आमुष्मिक एवं ऐहिक दोनों दृष्टियों से गीतगोविन्द की कोमलकान्त पदावली श्रवण सुभग सुखद है''–

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।

मधुरकोमलकान्तपदावलि शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।।

शैली – 'गीतगोविन्द' की भाषा नितान्त भावानुरूप है, शब्द सौष्ठव प्रवाहमय है तथा शैली अत्यन्त सरस है। जो व्यक्ति संस्कृत भाषा में निष्णात् नहीं है वह भी इसकी कर्णप्रिय शब्दावली को सुनकर आनन्द विभोर हो जाएगा। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं–

ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन-कोमल-मलय -समीरे।

मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल-कूजित-कुञ्ज-कुटीरे।। सर्ग–1, प्रबन्ध–3

अपनी कविता की कमनीयता पर कवि को स्वाभिमान है। तभी उसने अन्त में कहा है कि जयदेव की वैदग्ध्यपूर्ण वाणी के समक्ष जगत् के सभी मधुर पदार्थ फीके हैं –

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि

के त्वाममृत मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते।

माकन्द क्रन्द कान्ताधर धर न तुलां गच्छ यच्छन्ति भावं

यावच्छृङ्गारसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः।। (12/12)

शब्द और अर्थ दोनों की कोमलता जयदेव की कविता की विशिष्टता है। शास्त्रीय दृष्टि से पाञ्चाली रीति और माधुर्य गुण का उत्कृष्ट निवेश इसमें हुआ है।

2.6 सारांश

आप जानते हैं कि जीवन की किसी घटना विशेष को लेकर लिखा गया काव्य खण्डकाव्य है। 'खण्डकाव्य' शब्द से ही स्पष्ट होता है कि इसमें मानव जीवन की किसी एक ही घटना की प्रधानता रहती है। प्रबन्धात्मकता महाकाव्य एवं खण्डकाव्य दोनों में ही रहती है परन्तु खण्डकाव्य के कथासूत्र में जीवन की अनेकरूपता नहीं होती इसलिए इसका कथानक कहानी की भाँति शीघ्रतापूर्वक अन्त की ओर जाता है। खण्डाकाव्य में केवल एक प्रमुख कथा रहती है, प्रासंगिक कथाओं को इसमें स्थान नहीं मिलने पाता है।

किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध एवं एक कथा का निरूपक ऐसा पद्यात्मक ग्रन्थ जिसमें सभी सन्धियाँ न हों वह खण्डकाव्य है। वह महाकाव्य के केवल एक अंश का ही अनुसरण करता है। तदनुसार हिन्दी के कतिपय आचार्य खंडकाव्य ऐसे काव्य को मानते हैं जिसकी रचना तो महाकाव्य के ढंग पर की गई हो पर उसमें समग्र जीवन न ग्रहण कर केवल उसका खण्ड विशेष ही ग्रहण किया गया हो।

इस इकाई में आपने महाकवि कालिदास विरचित ऋतुसंहार और मेघदूत, भर्तृहरि विरचित नीतिशतक, वैराग्यशतक और श्रृंगारशतक, अमरुककवि प्रणीत अमरुकशतक तथा जयदेव प्रणीत गीतगोविन्द के वर्ण्य-विषय एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का भी विस्तृत अध्ययन किया।

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित 2014

2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पद्मश्री डा० कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद. सं० 2009

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम संस्करण 2009

4. डॉ० एस.के. दे. : संस्कृत पोएटिक्स, भाग 1–2।

5. पं.बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्यशास्त्र, खंड 1–2

6. आई. ए. रिचर्ड्स : प्रिंसिपल्स ऑव लिटरेरी क्रिटिसिज्म।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1 खण्डकाव्य के स्वरुप पर प्रकाश डालिए।

2 मेघदूत के प्रतिपाद्य विषय पर टिप्पणी लिखिए।

3 अमरुकशतक के शैलीगत वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

इकाई 3 कथासाहित्य एवं ऐतिहासिक काव्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- कथासाहित्य के द्वारा कथाओं में अन्तर्निहित जीवन-दर्शन का व्यावहारिक-ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ऐतिहासिक-काव्यों के द्वारा भारतीय-प्राचीनेतिहास का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

- लोककथाओं के माध्यम से लोकोपयोगी सदाचार, व्यवहार तथा आचार-विचार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कुछ प्रमुख कथाओं तथा ऐतिहासिक काव्यों की कथावस्तु का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।।

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में कथासाहित्य एवं ऐतिहासिक काव्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे पहले आप महाकाव्यों तथा खण्डकाव्यों के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में आप कथासाहित्य के उद्भव तथा विकास एवं ऐतिहासिक काव्य तथा उसके उद्भव के विषय में विस्तृत अध्ययन करेंगे। कथासाहित्य में आप लोककथा एवं नीतिकथा के विषय में विशिष्ट एवं ज्ञानपरक अध्ययन करेंगे। साथ ही साथ ऐतिहासिक काव्यों के अध्ययन के द्वारा आप संस्कृत साहित्य में निहित ऐतिहासिकता के महत्त्व को जानेंगे।

3.2 कथासाहित्य का उद्भव और विकास

प्रत्येक मनुष्य की अभिव्यक्ति का स्वरूप गद्यात्मक ही होता है। यही मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मनुष्य अपने भावों को जितनी सरलता एवं सहजता से गद्य में अभिव्यक्त करता है उतना पद्य में नहीं कर सकता क्योंकि गद्य छन्द, गण, मात्रा इत्यादि के नियम से सर्वथा विरहित होता है इसीलिए गद्य तथा पद्य इन दोनों में से गद्य में ही अभिव्यक्ति करना सर्वजनसंवेद्य होता है।

वस्तुतः काव्य दो प्रकार का होता है– प्रथम दृश्य काव्य, द्वितीय श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य अर्थात् अभिनेय अथवा नाटक, श्रव्य काव्य अर्थात् गद्य, पद्य और चम्पू काव्य।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण के षष्ठ-परिच्छेद के प्रारम्भ में कहते हैं–

''दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।''

श्रव्य-काव्य के तीन भेदों को आचार्य दण्ड़ी ''काव्यादर्श'' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार स्पष्ट करते हैं–

''गद्यं पद्यं च मिश्रं तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।''

गद्यकाव्य भाषा का एक स्वाभाविक स्वरूप है जिसमें पद्य-बन्ध का सर्वथा परित्याग करते हुए भाव एवं रस के चमत्कार के साथ अलङ्कार-विन्यास तथा भाषा की प्राञ्जलता मुख्य रूप से प्रतिपादित होती है।

आचार्य दण्डी ''काव्यादर्श'' में गद्य का लक्षण इस प्रकार करते हैं– **''अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा''**। अर्थात् पद-बन्ध रहित वाक्य-विन्यास को गद्य कहते हैं। गणमात्रानियत पद्यतुरीय भाग पाद कहा जाता है, उससे रहित पद अर्थात् सुबन्त-तिङन्त

समुदाय को गद्य कहते हैं अर्थात् जिस सुबन्त तथा तिङन्त पद-समुदाय में गणमात्रानियत पाद नहीं हो उसको गद्य कहते हैं।

यजुर्वेद के ''**गद्यात्मकं यजुः**'' इस कथन से गद्य की प्राचीनता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। गद्य की परिभाषा आचार्य जैमिनि ने मीमांसा-सूत्र में इस प्रकार रेखाङ्कित की है– जिन पदों का सामूहिक रूप से एकात्मक-अर्थ हो और विभाजित (पृथक्) रूप में जो साकाङ्क्ष पद हों तथा जिनमें एकवाक्यता हो वह गद्य कहलाता है।

''अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद् विभागे स्यात्।''

इसी गद्यकाव्य के दो भेद माने गये हैं– कथा और आख्यायिका। इन दोनों भेदों का सर्वप्रथम निरूपण अग्निपुराण में हुआ है–

''आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यस्य पञ्चधा।।''

अमरकोश में भी कथा के विषय में इस प्रकार कहा गया है– ''प्रबन्धकल्पना कथा'' अर्थात् काल्पनिक प्रबन्ध (रचना) की जहाँ प्रधानता हो वह कथा कही जाती है। कथा के स्वरूप को प्रकट करते हुए आचार्य विश्वनाथ साहित्यदर्पण के षष्ठ-परिच्छेद में कहते हैं–

''कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।''

अर्थात्

1) कथा में कथावस्तु कवि-कल्पित होता है।
2) कथा के प्रारम्भ में पद्यों के द्वारा सज्जनों की प्रशंसा, दुष्टों की निन्दा तथा कवि के वंश का वर्णन होता है।
3) कथा में विभाजन नहीं होता है।
4) कथा में मुख्य कथानक ;ब्मदजतंस प्कमंद्ध को लाने के लिए दूसरी कथा से आरम्भ किया जाता है।
5) कथा में नगर, वन, मृगया (आखेट), राजा, प्रेम, सरोवर इत्यादि का वर्णन होता है।

कथा साहित्य का उद्भव– भारतीय साहित्य का एकमात्र आधार है– वेद। वेद ही भारतीय वाङ्मय का उपजीव्य है। ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों से भारतीय कथासाहित्य का मुख्य संवाद तत्त्व प्राप्त होता है। पुरुरवा-उर्वशी संवाद, सरमा-पणि संवाद, विश्वामित्र-नदी संवाद, यम-यमी संवाद इत्यादि सूक्तों में तात्कालिक कथाओं को बड़े ही रोचक ढँग से प्रस्तुत किया गया है। ये संवाद कथासाहित्य का मूल उत्स हैं, इनके बिना भारतीय कथासाहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। कथनोपकथन इन संवाद-सूक्तों की प्रमुख विशेषता है।

इनमें प्रेम, हठ, व्यंग्य, तात्कालिक सामाजिक परिवेश, नीति, उपदेश एवं लौकिक-व्यवहार के ताने-बाने को बखूबी बुना गया है। वेदों के संवाद अथवा आख्यान कभी सादृश्यमूलक, कभी प्रतीकात्मक, कभी अन्योक्तिपरक, कभी कार्य-विशेष में घटी घटना को देशातीत और कालातीत प्रस्तुत करते हैं।

अनुक्रमणी साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहद्देवता में भी देवताओं से सम्बन्धित चालीस आख्यानों का विस्तृत-वर्णन प्राप्त होता है जो 300 श्लोकों में निबद्ध है। मैकडॉनल के अनुसार यह ग्रन्थ प्राचीनतम व्यवस्थित आख्यान-संग्रह है।

उपनिषदों में भी जीव-जन्तुओं की कथाएँ विशिष्ट रूप से आयी हैं। कुत्तों के द्वारा अपने नेता का चुनाव, दो हंसों के वार्तालाप से रैक्व का ध्यान भङ्ग होना इत्यादि।

रामायण में भी नीतिकथाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत में भी लोककथाओं और पशुकथाओं की प्रचुरता है, जिनमें नैतिक एवं धार्मिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षा पर भी जोर दिया गया है। शान्ति-पर्व में कुल 12 कथाएँ हैं जिनमें सोने के अण्डे देने वाली चिड़िया की कथा, चतुर सियार की कथा, गज-कच्छप की कथा प्रमुख है। आदि पर्व की कथाओं में शकुन्तलोपाख्यान, नलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान कथा की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

सावित्र्युपाख्यान का प्रचार-प्रसार तो भारत में बहुत अधिक हुआ। आज भी भारतीय स्त्रियाँ सावित्री-व्रत के उपलक्ष्य पर इस आख्यान का श्रवण कर पातिव्रत्य एवं सौभाग्य के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती हैं।

इसके पश्चात् महर्षि पतञ्जलि ने कथासूचक-लोकोक्तियों का अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है। जैसे– अजाकृपाणीय, काकनालीय, अहिनकुलम्, काकोलूकीयम्।

आर्यशूर की जातकमाला में 35 जातक कथाओं का विपुल संग्रह है। इनके उपरान्त पालि-साहित्य में भी अनेक बौद्ध-कथाएँ लिखी गईं। बौद्धों के अनुकरण के फलस्वरूप जैनों ने भी कथासाहित्य पर ग्रन्थ लिखे। हरिषेण के ''बृहत्कथाकोश'' में एक-एक जैन-सिद्धान्त का प्रतिपादन पृथक्-पृथक् कथाओं में किया गया है।

कथाओं के प्रकार – संस्कृत में कथा लिखने के दो उद्देश्य प्रधान थे– शुद्ध मनोरंजन एवं नैतिक उपदेश। शुद्ध मनोरंजन के लिए जो कथाएँ प्रचलित हुईं वे लोककथा तथा धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा प्रदान करने के लिए जो कथाएँ प्रचलित हुईं वे नीतिकथा कहलाईं। कुछ नीतिकथाएँ पशु-पक्षियों को आधार मानकर लिखी गई हैं। मनुष्य पशुओं के व्यवहार से शिक्षा ग्रहण कर सके इसीलिए पशु-पक्षियों की प्रधानता के कारण इन्हें पशुकथा के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इन सभी कथाओं में रोचकता, सरलता, मार्मिकता, आश्चर्यजनकता, प्रेम, विश्वासघात, धर्म, नीति, सदाचार तथा आचार-विचार का वर्णन है। इन

सभी कथाओं में कल्पना के प्राधान्य के साथ-साथ वस्तुपरकता भी शामिल है। अतः यह कहना युक्तिसंगत है कि विश्व की अन्य भाषाओं के कथासाहित्य का बीज भी संस्कृत की ही कथाएँ हैं।

इनके अतिरिक्त अद्भुत कथा तथा कल्पित-कथा भी कथासाहित्य में प्रमुख स्थान रखती हैं। खण्डकथा-परिकथा और कथानिका भी कथाओं के अवान्तर भेद हैं।

3.3 नीति-कथाओं की विशेषताएँ

मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए बौद्धिक बल का प्राचुर्य अपने आप में विशिष्ट स्थान रखता है। बौद्धिक-बल नीतिकथाओं के माध्यम से अत्यधिक सहजता से प्राप्त होता है। नीतिकथाओं के नैतिक उपदेश व्यावहारिक ज्ञान तथा जीवन दर्शन को बढ़ाते हैं। बालकों के कोमल मन में ये नीतिकथाएँ तीव्रता से उनके सोचने, समझने की शक्ति को बढ़ाती हैं। ये नैतिक-उपदेश पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर दिये जाते हैं जिससे कथा में रोचकता का अभाव न हो। पशु-पक्षियों को पात्र बनाने के लिए (पीछे) एक तर्क यह भी है कि जब पशु-पक्षी ही बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्य करते हैं, एक-दूसरे की मदद करते हैं तो हम मनुष्यों को भी मिल-जुलकर कार्य करना चाहिए।

नीतिकथाओं में जीवन के सत्-असत् दोनों पक्षों का चित्रण करके असत् से बचने और सत् के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया जाता है इनमें नीति, सदाचार, धर्म, दर्शन तथा काव्य-सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय है।

इन कथाओं में एक कथा से अवान्तर कथा निकलती है जो श्रोता को रुचिकर लगती है जिससे कथा को सुनने में उसे अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती है। गद्य-पद्य का सम्मिश्रण कथा की रोचकता में चार-चाँद लगा देता है। जिससे श्रोताओं को अत्यधिक उत्कण्ठा के साथ आनन्द की प्राप्ति होती है। नीतिकथाओं की शैली सरस, सरल, सुगम्य एवं सुबोध है। मनुष्य के जीवन को उन्नति पथ पर अग्रसर करने में, उनको व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने में, सामाजिक आचार-विचार की शिक्षा देने में, मानवीय गुणों का विकास करने में, इन नीतिकथाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

नीतिकथाओं के विषय में यह श्लोक उल्लेखनीय है–

> **''श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु।**
> **वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च।।''**

3.4 प्रमुख नीतिकथाएँ एवं लोककथाएँ

3.4.1 पञ्चतन्त्र

पञ्चतन्त्र के लेखक विष्णु शर्मा हैं। वस्तुतः पञ्चतन्त्र का मूल स्वरूप नष्ट हो चुका है। इसके बहुत पाठान्तर प्राप्त होते हैं। विष्णु शर्मा कौन थे, यह भी निर्विवाद नहीं है। कुछ

विद्वान् चाणक्य को, कुछ विद्वान् चाणक्य के पुत्र को तथा कुछ विद्वान् अन्य किसी को ही विष्णु शर्मा मानते हैं परन्तु पञ्चतन्त्र के आरम्भिक पद्यों के आधार पर विष्णु शर्मा चाणक्य से सर्वथा भिन्न थे। दोनों को एक स्वीकार करना तर्कसंगत नहीं है।

''मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय।

चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्यः।।''

प्रस्तुत पद्य में विष्णु शर्मा मनु, बृहस्पति, शुक्र, पराशर एवं वेदव्यास के अतिरिक्त चाणक्य को भी नमस्कार करते हैं। विष्णु शर्मा पञ्चतन्त्र को सम्पूर्ण अर्थशास्त्र का सार भी कहते हैं। वे लिखते हैं–

''सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम्।

तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम्।।''

पञ्चतन्त्र का रचना-समय –History of Sonskrit Literature में ए॰बी॰ कीथ, प्रो॰ हर्टल का उल्लेख करते हैं। प्रो॰ हर्टल ने इसकी रचना का समय 200 ई॰पू॰ के बाद स्वीकार किया है।

पञ्चतन्त्र की विषय-वस्तु – कथासाहित्य में पञ्चतन्त्र की प्रधानता तथा लोकप्रियता सर्वविदित है। इसी के आधार पर यह ग्रन्थ अत्यधिक प्रचार-प्रसार के साथ न केवल भारतीय जन-मानस पर प्रत्युत (विदेशी) जन-मानस पर भी अपनी गहरी छाप छोड़ चुका है। इसकी कथावस्तु मनोरंजन के साथ-साथ जीवन जीने के तरीकों पर बल देती है। कथाओं के माध्यम से सामाजिक एवं व्यावहारिक ज्ञान को भी इसमें बतलाया गया है। इसका कथा-शिल्प अद्भुत एवं नितान्त प्रासंगिक है। विश्व कथा साहित्य में पञ्चतन्त्र जैसा कोई ग्रन्थ नहीं है जिसमें पशु-पक्षियों के माध्यम से मनोरंजन पर आधारित कथाएँ निर्मित की गई हैं। विष्णु शर्मा की यह शैली अपने आप में एक अजूबा है।

पञ्चतन्त्र में पाँच तन्त्र अथवा अध्याय है। यहाँ तन्त्र शब्द वस्तुतः अध्याय का परिचायक है। इसके साथ ही तन्त्र शब्द राजतन्त्र का द्योतक है जिससे नीतियुक्त शासन-विधि का ज्ञान होता है। इसमें नीतियुक्त शासन विधि के पाँच तन्त्र बताये गये हैं। इन तन्त्रों अथवा अध्यायों के नाम इस प्रकार हैं–

1) मित्र-भेद
2) मित्र-संप्राप्ति
3) काकोलूकीयम्
4) लब्धप्रणाश
5) अपरीक्षितकारक

इसमें कुल 75 कथाएँ हैं तथा पद्यों की कुल संख्या 1100 है।

1) **मित्र-भेद** – मित्र-भेद में कुल 22 कथाएँ हैं तथा श्लोक 461 हैं, जिनमें ''शेर और बैल की मित्रता तुड़वाना'' यह कथा मुख्य है। इसी के आधार पर इसका नामकरण हुआ है। पिङ्गलक नामक शेर तथा सञ्जीवक नामक बैल ये दो मित्र थे। करटक और दमनक नामक दो गीदड़ों ने उनमें फूट डाल दी और बैल की हत्या करवा दी। इन 22 कथाओं के नाम इस प्रकार है।

1. मूर्ख वानर की कथा, 2. गोमायु श्रृगाल की कथा, 3. दन्तिल वैश्य की कथा, 4. देवशर्मा परिव्राजक की कथा, 5. जुलाहा तथा बढ़ई की कथा, 6. वायस-दम्पती की कथा, 7. बगुले और केकड़े की कथा, 8. भासुरक सिंह की कथा, 9. अग्निमुख खटमल और जूँ की कथा, 10. चण्डख श्रृगाल की कथा, 11. मदोत्कट सिंह की कथा, 12. टिट्टिभ-दम्पती और समुद्र की कथा, 13. कम्बुग्रीव, कच्छप और संकट, विकट हंस की कथा, 14. अनागत विद्याता, प्रत्युपन्नमति और यद्भविष्य मत्स्य की कथा, 15. चटक-दम्पती और काष्ठकूट की कथा, 16. वज्रदंष्ट्र सिंह और चतुरक श्रृगाल की कथा, 17. मूर्ख वानर यूथ की कथा, 18. वानर और चटक दम्पती की कथा, 19. धर्मबुद्धि और पापबुद्धि की कथा, 20. मूर्ख बगुला और चतुरक श्रृगाल की कथा, 21. जीर्णधन वणिक्पुत्र की कथा, 22. मूर्ख वानर और राजा की कथा।

इन कथाओं की प्रबल विशेषता है कि इनमें एक कथा का अपर कथा से पारस्परिक सम्बन्ध है, एक कथा में एक अथवा एक से अधिक अवान्तर कथाएँ भी हैं।

कथा का प्रारम्भ इस प्रकार होता है–

दक्षिण-देश में महिलारोप्य नामक एक नगर था, वहाँ के राजा अमरशक्ति थे। अमरशक्ति राजा के तीन मूर्ख पुत्र थे– बहुशक्ति, उग्रशक्ति तथा अनन्तशक्ति। इन तीनों मूर्ख पुत्रों को 6 महीने में विद्वान् तथा राजनीति में पारंगत बनाने का बीड़ा उठाकर विष्णु शर्मा ने पञ्चतन्त्र की रचना की तथा अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। मित्रभेद की एक कथा प्रस्तुत है–

यह वायस-दम्पती की कथा है। इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि उपाय से शत्रु पर जैसी विजय होती है वैसी अस्त्रों से नहीं हो सकती क्योंकि उपाय को जानने वाला छोटे शरीर वाला होने पर भी वीरों द्वारा जीता नहीं जा सकता।

इस अध्याय में 400 से भी अधिक सुभाषित वाक्य हैं। ये वाक्य जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। जैसे– राजनीति कैसे आचरण करती है, इसका सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत है–

''सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च।
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
भूरिव्यया प्रचुरवित्तरामागमा च,
वेश्याङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा।।''

अच्छे और बुरे कर्मों का फल निश्चित ही भोगना पड़ता है, इस विचार पर प्रस्तुत है –

''लोकेऽथवा तनुभृतां निजकर्मपाकं, नित्यं समाश्रितवतां सुहितक्रियाणाम्।

भावार्जितं शुभमथाप्यशुभं निकामं, यद्भावि तद् भवति नात्र विचारहेतुः।।''

अर्थात् इस संसार में जीवों को अपने उन कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है जो अपनी क्रिया द्वारा किया गया है क्योंकि अच्छा या बुरा जो अपने कर्म से उपार्जित है और जो भावी है वह होकर ही रहेगा इसीलिए इसमें सोच-विचार की जरूरत नहीं है।

मित्र-संप्राप्ति नामक अध्याय में कुल 6 कथाएँ हैं जिनमें कौआ, कछुआ, हिरण तथा चूहे की मित्रता की कथाएँ मुख्य हैं। इसी आधार पर इस अध्याय का नामकरण हुआ है। ये कथाएँ निम्नलिखित है–1. काक, कूर्म, मृग और मूषक की कथा, 2. हिरण्यक और लघुपतनक का संवाद, 3. हिरण्यक वृत्तान्त, 4. तिल बेचने वाली शाण्डिली की माता की कथा, 5. भील की कथा 6. प्राप्तव्यमर्थ वणिका की कथा, 7. सोमिलक कौलिक की कथा, 8. तीक्ष्ण विषाण और श्रृगाल की कथा।

इन कथाओं में उपयोगी मित्र बनाने पर अत्यधिक बल दिया गया है। इसमें यह नीतिशिक्षा है कि हमें उपयोगी मित्र बनाने चाहिए जो संकट के समय हमारा साथ दें।

इसमें 150 से भी अधिक सुभाषित वचन हैं जिनमें भावों का गाम्भीर्य परिलक्षित होता है। शत्रुता दो प्रकार की होती है, स्वाभाविक और कारणोत्पन्न जैसे– नकुल (नेवला) और साँप का, कुत्ते बिल्लियों का, मूर्ख तथा पण्डितों का, सज्जन और दुर्जनों का, अमीर और गरीब का स्वाभाविक वैर होता है। इस पाठ से यह शिक्षा मिलती है कि इस संसार में जो मनुष्य मित्र बनाता है और उनके साथ कपट-व्यवहार नहीं करता वह किसी प्रकार भी शत्रुओं से पराजय को प्राप्त नहीं होता। कहा गया है–

''यो मित्राणि करोत्यत्र न कौटिल्येन वर्तते।

तैः समं न पराभूतिं सम्प्राप्नोति कथञ्चन।।''

''काकोलूकीयम्'' नामक तृतीय अध्याय में कुल 16 कथाएँ हैं जिनमें कौओं और उल्लू की कथा प्रमुख है, इसमें यह शिक्षा प्रदान की गई है कि स्वार्थसिद्धि के लिए शत्रु से मिलकर उसे नष्ट कर देना चाहिए। कौआ उल्लू से मैत्री करके अन्ततः उसके निवास-स्थान में आग लगा देता है। इसी आधार पर इस अध्याय का नामकरण हुआ है। इसमें मित्र बने हुए शत्रु पर विश्वास न करने की बात कही गई है। जैसा कि कहा गया है–

''न विश्वसेत्पूर्वविरोधितस्य शत्रोश्च मित्रत्वमुपागतस्य।

दग्धां गुहां पश्य, उलूकपूर्णां काकप्रणीतेन हुताशनेन।।''

''लब्धप्रणाश'' नामक चतुर्थ अध्याय में कुल 11 कथाएँ हैं जिनमें बन्दर और मगरमच्छ की कथा मुख्य है। इसी कथा के आधार पर इसका नामकरण हुआ है। इस अध्याय से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि बुद्धिमान् बुद्धिबल से जीत जाता है तथा मूर्ख अपने हाथ में आयी हुई वस्तु भी खो देता है। कहा भी गया है–

''न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्।

विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।।''

अविश्वास के योग्य पुरुष का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए तथा विश्वासी का भी अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास के कारण उत्पन्न हुआ भय जड़ें भी काट देता है–सर्वथा नाश कर देता है, जिससे फिर उन्नति करने की कोई आशा नहीं रहती।

''अपरीक्षितकारक'' नामक पञ्चम एवं अन्तिम अध्याय में कुल 14 कथाएँ हैं, इनमें ब्राह्मणी और नेवले की कहानी मुख्य है। इससे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए।

ब्राह्मणी ने अपने प्रिय तथा सर्प से शिशु की रक्षा करने वाले नेवले की यह समझ कर हत्या कर दी कि उसने बच्चे को मार डाला है। वह बिना विचारे काम करने से पीछे पछताती है। इसी कहानी के आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

पुरुषार्थ करने से ही सफलता प्राप्त होती है, भाग्य के भरोसे तो कायर रहते हैं। कहा गया है–

''अभिमतसिद्धिरशेषा भवति हि पुरुषस्य पुरुषकारेण।
दैवमिति यदपि कथयसि पुरुषगुणः सोऽप्यदृष्टाख्यः।।''

पुरुषार्थ से ही मनुष्य की सम्पूर्ण मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। जिसे अदृष्ट या भाग्य कहा जाता है, वह अदृष्ट नाम का ही पुरुष का एक गुण होता है अर्थात् पुरुषार्थ के अतिरिक्त दैव (भाग्य) कुछ नहीं है। पुरुषार्थ का ही दूसरा नाम भाग्य है।

पञ्चतन्त्र की शैली– पञ्चतन्त्र की शैली अत्यन्त हृदयावर्जक एवं आकर्षक है। इसकी भाषा प्रवाहपूर्ण, सरल, उत्साहवर्धक तथा उत्कण्ठा प्रदान करने वाली है। सुभाषित वाक्य तो अत्यन्त असरदार हैं जिनका भावार्थ बहुत ही गम्भीर तथा सार्थक है। सारगर्भित वाक्य-विन्यास इसकी अपनी विशेषता है। बालविनोद के साथ-साथ मनोविनोद ही इसका एकमात्र लक्ष्य है। व्यवहार-कौशल की शिक्षा प्रदान करना ही इसका मौलिभूत उद्देश्य है। अलङ्कारों का सुन्दर नियोजन, भाव-गाम्भीर्य, रस-परिपाक, भाषा-वैविध्य पञ्चतन्त्र का वैशिष्ट्य है। इन्हीं महत्त्व को देखते हुए Great Strories of the World (संसार की प्रमुख लघुकथाएँ) नामक आधुनिक कहानी संग्रह (Collection of stories) में इसकी कहानियों को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

पञ्चतन्त्र में मौलिकता, आचारों की उदात्तता, भावों की उत्कृष्टता का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। इसकी अतिसरल, रोचक एवं सदुपदेशप्रद कथाओं के आधार पर यह सर्वजनग्राह्य हो गया है। इसकी कथाओं की शिक्षाओं को जीवन-पाथेय मानकर यदि कोई व्यक्ति इसे स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी सम्पूर्ण समस्याओं का हल कर सकता है, यह नितान्त तथ्यपूर्ण सत्य है।

3.4.2 हितोपदेश

हितोपदेश पञ्चतन्त्र पर आश्रित एक कथा ग्रन्थ है। इसके लेखक नारायण पण्डित हैं। हितोपदेश के उपान्तिम श्लोक में इस प्रकार लिखा है–''**तावन्नारायणेन प्रचरतु रचितः संग्रहोऽयं कथानाम्**''। इसकी रचना बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रित नारायण पण्डित ने की थी। इसकी एक पाण्डुलिपि 1373 ई॰ में प्राप्त हुई थी। इसी पाण्डुलिपि के आधार पर यह चौदहवीं शताब्दी के बाद की रचना नहीं हो सकती। फ्लीट ;थ्सममजद्ध ने हितोपदेश में प्रयुक्त भट्टारकवार (रविवार) शब्द के विषय में कहा है कि 900 ई॰पू॰ के पूर्व इसका प्रयोग नहीं था। वस्तुतः यह शब्द मित्रलाभ नामक प्रथम अध्याय की तीसरी कथा में इस तरह प्रयुक्त हुआ है–''**तदद्य भट्टारकवारे कथमेतान्दन्तैः स्पृशामि**''। इस आधार पर इसका काल 10वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी माना जा सकता है।

यह ''हितोपदेश'' नामक ग्रन्थ सुनने से संस्कृत में सम्भाषण की चतुरता को, सब विषयों में वाक्यों की विचित्रता को और नीतिविद्या को प्रदान करता है। नारायण पण्डित ग्रन्थ की प्रस्ताविका में कहते हैं–

''**श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु।**
वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च।।''

हितोपदेश चार भागों में विभक्त है–

1. मित्रलाभ 2. सुहृदभेद 3. विग्रह 4. सन्धि

इन चारों में कुल 39 कथाएँ हैं, प्रत्येक भाग की मुख्य 4 कथाओं को मिलाकर पूरे ग्रन्थ में 43 कथाएँ हैं। इसमें पद्यों की कुल संख्या 726 है। पञ्चतन्त्र की ही शैली का इसमें अनुसरण किया गया है। लगभग 25 कथाएँ वहीं से ली गई हैं। इसके कुछ पद्य ''कामन्दकीयनीतिसार'' से संकलित हैं। इसमें विद्या की प्रशंसा, संसार के छः सुख, पण्डित का लक्षण, व्यवहार से शत्रु और मित्र का ज्ञान, शरीर और गुण का अन्तर, दुर्जन की निन्दा, मित्र के दूषण, धन की प्रशंसा, दुर्जन और सज्जन का अन्तर, वीर पुरुष की प्रशंसा, सेवा की प्रशंसा, पतिव्रता का लक्षण, कायर पुरुष का लक्षण, राज्य के छह अंग, भाग्य की निन्दा, कर्म का दोष इत्यादि विविध विषयों का अत्यन्त गूढ़ एवं तात्त्विक वर्णन है। कथा प्रवाह, रस परिपाक, रोचकता, मधुरता, कोमल-कान्त पदावली, भाषा गाम्भीर्य, उपदेशात्मकता, जीवन की यथार्थता इत्यादि इस ग्रन्थ की विशेषता है।

इसमें पञ्चतन्त्र के प्रथम दो तन्त्रों का क्रम परिवर्तित कर पौर्वापर्य क्रम में मित्रप्राप्ति और फिर मित्र-भेद प्रदर्शित किया गया है। पञ्चतन्त्र के तीसरे तन्त्र ''काकोलूकीयम्'' को तोड़कर विग्रह और सन्धि दो परिच्छेद नये बनाये गये हैं। इसकी 43 कहानियों में से 17 कथाएँ नितान्त नूतन है, जिनमें 7 पशुकथाएँ, 3 लोककथाएँ, 2 शिक्षाप्रद कथाएँ और 5 षड्यन्त्र कथाएँ शामिल हैं।

इसकी प्रस्ताविका में पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के चार मूर्ख पुत्रों को विष्णु शर्मा के द्वारा नीतिशास्त्र की शिक्षा देने की कथा है। इसमें 1 उपकथा तथा कुल 47 श्लोक है।

1. मित्रलाभ– इसमें कौए, कछुए, हिरण तथा चूहे की मित्रता की कथा मुख्य है। इसी के आधार पर इसका नामकरण हुआ है। इसमें कुल आठ कथाएँ हैं तथा कुल 212 पद्य हैं। वास्तविक विवेकी अथवा ज्ञानी कौन है, इस पर कहते हैं–

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

अर्थात् जो पराई स्त्री को माता के समान, पराये धन को कंकड़ के समान और सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझता है, वही सच्चा ज्ञानी है।

2. सुहद्भेद– इस अध्याय का नामकरण सिंह और बैल की मित्रता सियार द्वारा तोड़े जाने की कथा के आधार पर हुआ है। इसमें कुल 9 कथाएँ तथा 184 श्लोक है। मन की बात को कैसे जाना जाता है, यह बताते हैं–

''आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।

नेत्रवक्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः।।''

अर्थात् आकार से, हृदय के भाव से, चाल से, काम से, बोलने से और नेत्र तथा मुँह के विकार से औरों के मन की बात जान ली जाती है।

इस अध्याय से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि किसी दूसरे के बहकावे में आकर मित्रता नहीं तोड़नी चाहिए।

3. विग्रह– इस अध्याय का नामकरण हंसों और मयूरों के युद्ध की कथा के आधार पर हुआ है। इसमें कुल 9 कथाएँ तथा कुल 149 श्लोक है। राजा को अपनी बात केवल विश्वासपात्र मन्त्री को ही कहनी चाहिए, यह बताते हैं–

''षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रस्तथा प्राप्तश्च वार्तया।

इत्यात्मना द्वितीयेन मन्त्रः कार्यो महीकृता।।''

अर्थात् छः कानों में (तीन व्यक्ति) गुप्त बात जाने से तथा अन्य से विदित हुई बात खुल जाती है अर्थात् प्रकट हो जाती है, इसीलिए राजा को केवल एक ही से अर्थात् अकेले मन्त्री से ही एकान्त में वार्ता करनी चाहिए।

4. सन्धि– इसमें हंसों तथा मयूरों के बीच गीध और चकवे के द्वारा मैत्री कराने की मुख्य कथा है। इसी कथा के आधार पर इसका नामकरण हुआ है। इसमें कुल 12 कथाएँ तथा 134 श्लोक हैं। सच्चा भाई अथवा बन्धु कौन है, यह कहते हैं–

''उत्सवे व्यसने युद्धे दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।''

अर्थात् विवाह आदि माङ्गलिक कार्यों में, दुःख में, युद्ध में, अकाल में, राज्य पीड़ा में, राजद्वार में और श्मशान में जो साथ रहता है, वह सच्चा बान्धव है।

इस प्रकार हितोपदेश विद्वानों में सरल एवं सरस शैली के कारण अत्यन्त्र समादृत है। प्रारम्भिक संस्कृत-ज्ञान के लिए इसकी कथाएँ सर्वथा उपयोगी है। लौकिक दृष्टान्तों के द्वारा गम्भीर विषय को स्पष्ट करना इसका वैशिष्ट्य है।

3.4.3 अन्य लोककथाएँ

लोककथाएँ लोकजीवन पर आधारित होती हैं। ग्राम्य जीवन, सामाजिक व्यवहार, जातिगत मूल्य बोध, सामाजिक समरसता इसके प्रमुख विषय होते हैं। संस्कृत की लोककथाएँ पैशाची भाषा में लिखे गए ग्रन्थ बृहत्कथा पर आश्रित हैं। बृहत्कथा बड्डकहा नाम से प्रसिद्ध थी। इसके रचनाकार आचार्य गुणाढ्य हैं। बृहत्कथा के बाद बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर इत्यादि लोककथाएँ प्रचलित हुईं।

1. **बृहत्कथा**– पैशाची प्राकृत में लिखी गई यह लोककथा वस्तुतः लोककथाओं का अनुपम संग्रह है। इसका प्रणयन-काल प्रथम या द्वितीय शताब्दी के आस-पास का है। कथासरित्सागर नामक कथा-ग्रन्थ के प्रारम्भ में इसकी रचना की परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन है कि सातवाहन-नरेश की राजसभा में संस्कृत भाषा सिखाने की एक बाजी में हार जाने के कारण गुणाढ्य को संस्कृत बोलना छोड़ देना पड़ा एवं परेशान होकर वे विन्ध्याटवी में पशु-पक्षियों को पैशाची भाषा में कथाएँ सुनाने लगे। उन्हीं कथाओं में कुछ कथाएँ बच गयीं वे ही बृहत्कथा कहलायी।

बृहत्कथा इस समय उपलब्ध नहीं है। इसका अन्तिम संस्करण 1070 ईसवी में संस्कृत में निकला था। इस तिथि के पूर्व तक अनेक संस्कृत कवियों ने इस कथा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी जैसे– बाणभट्ट, दण्डी, सुबन्धु, धनपाल, त्रिविक्रिमभट्ट, गोवर्धनाचार्य इत्यादि। आर्यासप्तशती में गोवर्धनाचार्य लिखते हैं–

> ''अतिदीर्घजीवदोषाद् प्यासेन यशोऽपहारितं हन्त।
> कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः।।''

नलचम्पू में त्रिविक्रमभट्ट कहते हैं–

> ''शश्वद् बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
> धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः।।''

तिलकमञ्जरी में धनपाल लिखते हैं–

> ''मन्ये बृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय निर्मिताः।
> तेनेतरकथाः कन्था न विभान्ति तदग्रतः।।''

कौशाम्बी के राजा उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त के पराक्रमों का इसमें वर्णन है। अपने मित्र गोमुख के साथ वन में जाकर नरवाहनदत्त ने विद्याधर-राजकुमारी मदनमञ्जुका से विवाह कर लिया। मदनमञ्जुका को एक विधाधर मानसवेग उड़ा ले गया। मानसवेग की

बहन वेगवती ने मदनमञ्जुका का पता लगाने में नरवाहनदत्त की बहुत सहायता की। अन्त में वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ और विधाधरों का राजा हो गया।

2. **वेतालपञ्चविंशति**– बृहत्कथामञ्जरी एवं कथासरित्सागर से इस कथा-संग्रह का उद्‌भव हुआ। इसमें विक्रम और वेताल से सम्बद्ध 25 शिक्षाप्रद एवं रोचक कहानियों का संकलन है। इसके दो संस्करण प्राप्य हैं जिनमें प्रथम शिवदास ने तथा द्वितीय जम्भलदत्त ने लिखा है। मंगोल भाषा में सिद्धिकूर ''अलौकिक शक्तिशाली मृतक'' नाम से इसका रूपान्तर हुआ है।

इसकी कथा इस प्रकार है– राजा विक्रमादित्य (विक्रमसेन) को एक भिक्षुक प्रतिवर्ष एक फल देता है, जिसमें एक रत्न रहता था। राजा उस भिक्षुक की सहायता के लिए एक वेताल (भूत) से अधिष्ठित शव लाने के लिए श्मशान जाता है। वेताल इस शर्त पर तैयार होता है कि राजा मार्ग में चुप रहे। वह मार्ग में उसे पहेली वाली कहानी सुनाता है और राजा से उसका उत्तर माँगता है। राजा अपनी शर्त भूलकर उत्तर देने लगता है और फिर वह वेताल (शव) वापस श्मशान में पेड़ पर लटक जाता है। इस प्रकार 24 बार यह होता है, 24 तथा 1 मुख्य कथा यह मिलकर 25 पहेली युक्त कथाएँ तैयार हो जाती हैं। वेताल के प्रश्न अत्यन्त मनोरंजक एवं रहस्य से परिपूर्ण हैं। प्रश्न करने की शैली तथा कथा कहने की शैली तो हास्य एवं रोचकता से परिपूर्ण है।

इस कथा का विश्व की अधिकांश भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। पञ्चतन्त्र के समान यह भी विश्व में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

3. **सिंहासनद्वात्रिंशिका**– यह कथा ग्रन्थ भी विक्रमादित्य से सम्बद्ध है। मनोरंजकता और लोकप्रियता में यह ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों से बढ़कर है। राजा भोज का नाम होने के कारण इसका रचना-काल 11वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का निश्चित होता है। इस ग्रन्थ के अन्य नाम भी प्रचलन में है, जैसे–द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, विक्रमार्कचरित या विक्रमचरित।

   इसमें कथा है कि एक बार राजा भोज को भूमि में गड़ा हुआ विक्रमादित्य का सिंहासन प्राप्त हुआ। उसमें बत्तीस पुतलियाँ लगी हुई थीं। जब सिंहासन को स्वच्छ कराने के बाद भोज ने उस पर बैठने का प्रयास किया तब उन पुतलियों ने उन्हें रोका और विक्रमादित्य के न्याय से सम्बद्ध कथाएँ सुनायी। इन बत्तीस कथाओं में विक्रमादित्य के सत्य, पराक्रम, उदारता, सच्चरित्रता तथा न्याय का वर्णन है। जो उन गुणों से युक्त हो वही उस सिंहासन का अधिकारी होगा। इस प्रकार भोज उस पर नहीं बैठ पाते।

   इसके तीन संस्करण प्रचलित हैं, एक–केवल पद्य में, दूसरा–केवल गद्य में और तीसरा गद्य-पद्य मिश्रित में। मनोरंजन की दृष्टि से यह कथा बहुत लोकप्रिय है।

4. **शुकसप्तति**– इसमें 70 रोचक कथाएँ हैं। प्रत्येक कथा स्वतन्त्र कथा है। इसके लेखक का नाम और रचना-काल अज्ञात है। जैनाचार्य हेमचन्द्र इससे परिचित हैं, अतः इसका रचना-काल 11वीं शताब्दी से पूर्व समझना चाहिए। 14वीं शताब्दी में ''तूतीनामा'' नाम से इसका फारसी-रूपान्तर ''नक्वशी'' ने किया था।

इसके परिष्कृत-संस्करण के लेखक चिन्तामणि भट्ट हैं तथा सामान्य संस्करण के लेखक श्वेताम्बर जैन हैं।

रिचर्ड श्मिट ने जर्मन भाषा में इसका अनुवाद किया था। इसकी कथा इस प्रकार है– हरदत्त नामक एक व्यापारी के मदनसेन नामक एक मूर्ख पुत्र था। वह मदनसेन व्यापार को छोड़कर अपना सम्पूर्ण समय पत्नी के साथ प्रेमालाप में ही व्यतीत करता था। इससे परेशान होकर हरदत्त उसे दो पक्षी उपहार में देता है। वे दोनों बुद्धिमान् पक्षी जिनमें एक शुक (तोता) और एक कौवा उसको सन्मार्ग पर ले आते हैं।

तोता युक्ति से उसको अपने वश में कर लेता है और प्रतिदिन एक-एक कथा सुनाते हुए 70 रात्रियों में 70 कथाएँ सुनाकर उसके जीवन के समय में उसका मनोरंजन करता है। 70 दिनों के बाद उसका पति आ जाता है और वह बुराई से बच जाती है।

''अलिफ लैला'' की कथाओं के समान इन कथाओं का उद्देश्य रोचकता के कारण श्रोता को अपने बुरे कार्यों से रोकना है।

इसकी भाषा-शैली अत्यन्त हृदयावर्जक एवं आकर्षक है। इसके पद्य अत्यन्त मनोहारी एवं उपदेशात्मक हैं। भाव की दृष्टि से यह कथा विश्व-कथा-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

3.5 ऐतिहासिक काव्य का उद्भव और विकास

ऐतिहासिक काव्य इतिहास में घटित होने वाली घटनाओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं, इन काव्यों में शौर्य, पराक्रम, उत्साह, राजनीति इत्यादि विषय प्रधानता से वर्णित होते हैं। भारत में विश्वसनीय, तिथियों तथा घटनाओं के क्रम से अभी तक कोई ऐतिहासिक काव्य नहीं है क्योंकि भारतीय विद्वान् तिथियों एवं घटनाओं के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के बजाय राष्ट्रोन्नति को ही महत्त्वपूर्ण समझते थे इसीलिए राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान के लिए उनके द्वारा रचित ऐतिहासिक काव्य ही इसमें प्रमाणभूत है।

वस्तुतः रामायण, महाभारत तथा पुराण इत्यादि हमारे ऐतिहासिक काव्य है, इनमें राष्ट्राभ्युदय ही चिन्तन का प्रमुख विषय रहा है। पाषाण-फलकों, स्तम्भों, मन्दिरों, गुफाओं तथा ताम्रपत्रों पर अंकित अभिलेख हमारे ऐतिहासिक ज्ञान के सर्वदा साक्षी रहे हैं। इन अभिलेखों अथवा शिलालेखों में गिरनार-शिलालेख (150 ईस्वी), नासिक का प्राकृत-अभिलेख (149 ईस्वी), समुद्रगुप्त का प्रयाग-स्तम्भ लेख (350 ईस्वी), स्कन्दगुप्त का गिरनार-शिलालेख (457 ईस्वी) वत्सभट्टि की मन्दसोर–प्रशस्ति (473 ईस्वी), रविकीर्ति का ऐहोल शिलालेख (634 ईस्वी) प्रमुख है।

इन ऐतिहासिक काव्यों में काव्यगत चारुता तो उत्कृष्ट है ही प्रत्युत इतिहासगत चारुता भी कम नहीं है। इतिहास में प्रसिद्ध पुरुषों के वर्णन में संस्कृत-कवियों ने नायकोचित गुणों के वर्णन के साथ ही अतिशयोक्ति तथा कल्पना-प्रसूत वर्णन को अधिक प्रधानता दी है।

ऐतिहासिक काव्यों का आरम्भ महाकवि अश्वघोष द्वारा विरचित बुद्धचरित से होता है। इसमें इतिहास-पुरुष बुद्ध की जीवन-गाथा वर्णित है। इसके बाद हर्षचरित, गउड़वहो, आर्यमञ्जुश्रीकल्प, नवसाहसाङ्कचरित, विक्रमाङ्कदेवचरित, राजतरङ्गिणी, पृथ्वीराजविजय, कुमारपालचरित, कीर्तिकौमुदी, हम्मीरमहाकाव्य, राठौरवंश काव्य, कार्णाटकराजतरङ्गिणी, स्वातन्त्र्य-सम्भवम्, इन्दिरावैभवम्, इत्यादि ऐतिहासिक-काव्य भी इतिहास–प्रधान वर्णन को प्रमुखता से वर्णित करते हैं।

3.6 प्रमुख ऐतिहासिक काव्य

3.6.1 हर्षचरित

महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित यह आख्यायिका ग्रन्थ एक ऐतिहासिक काव्य है। यह हर्ष के शासनकाल, उसका जीवन-वृत्त तथा उसके पूर्वजों के इतिवृत्त का सम्यक् वर्णन करता है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं।

हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास के दसवें पद्य में स्वयं बाणभट्ट कहते हैं–

''उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती।

कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः।।''

इसमें दो कथानक हैं, पहला-बाण की आत्मकथा जिसमें हर्षवर्धन से उनके सम्मान पाने का वृत्तान्त है, दूसरा हर्षवर्धन की कथा जिसमें उनके पूर्वजों एवं पिता का वृत्तान्त देकर हर्ष के राजा बनने के काल की कठिन-परिस्थितियों का चित्रण है।

इसमें आरम्भ में 21 श्लोकों में क्रमशः मंगलाचरण तथा पूर्वाचार्यों के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है।

चतुर्थ उच्छ्वास में हर्षवर्धन के जन्म का वृत्तान्त वर्णित है। राजा प्रभाकरवर्धन एवं यशोमती के गर्भ से तीन सन्तान उत्पन्न हुई–राज्यवर्धन, हर्षवर्धन एवं राज्यश्री। हर्षवर्धन का जन्म ज्येष्ठ कृष्ण, द्वादशी, कृत्तिका नक्षत्र में हुआ था।

हर्षचरित पर कुछ 'संस्कृत-टीकाएँ' भी लिखी गई हैं, जिनमें शङ्करकृत संकेत टीका, (11वीं शताब्दी, कश्मीर) तथा रंगनाथ द्वारा रचित मर्मावबोधिनी टीका प्रमुख है।

अलंकारों के प्राचुर्य-प्रयोग भी हर्षचरित की विशिष्टता है। विरोधाभास, दीपक, एकावली, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, निदर्शना तथा अर्थान्तरन्यास इनमें प्रमुख है। रस और भाव तो हर्षचरित के शरीर एवं आत्मा के रूप में है। तात्कालिक समाज, शिक्षा-व्यवस्था, राजनैतिक उथल-पुथल, शिल्प तथा व्यवसाय, राजनीति, धार्मिक व्यवस्था, स्त्रियों की स्थिति एवं सामाजिक आचार-विचार ये सभी हर्षचरित के मुख्य विषय हैं।

3.6.2 गउड़वहो

यह प्राकृत भाषा में लिखा गया ऐतिहासिक काव्य है। इसके लेखक वाक्पतिराज है। संस्कृत में इसका अर्थ गौड़वधः होता है। वाक्पतिराज कन्नौज के राजा मशोवर्मा के आश्रित कवि थे। इस काव्य में कन्नौज के राजा यशोवर्मा के द्वारा किसी गौड़ देश के राजा के वध का वर्णन है।

राजतरङ्गिणी में वर्णन है कि कश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मा से सन्धि की थी परन्तु वाद में इस सन्धि के भंग हो जाने से उसे समूल नष्ट कर दिया गया। जैसे–

''कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।

जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्।।''

इस काव्य में ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन कवि ने अत्यन्त निपुणता से किया है।

3.6.3 आर्यमञ्जुश्रीकल्प

इसके लेखक का नाम अज्ञात है। इसकी खोज सन् 1925 में डॉ॰ टी॰ गणपति शास्त्री ने की थी। यह महायान बौद्ध-सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। इसमें तकरीबन 700 ई॰पू॰ से लेकर 770 ई॰पू॰ तक के राजाओं का इतिहास दिया गया है। इसका रचना-काल 800 ईस्वी माना जाता है। ऐतिहासिक काव्यों में यह अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

3.6.4 नवसाहसाङ्कचरित

परिमल उपनामधारी पद्मगुप्त इसके रचयिता हैं। ये धारानरेश परमारवंशीय वाक्पतिराज (द्वितीय) तथा उनके अनुज सिन्धुराज के आश्रित कवि थे। वाक्पतिराज (द्वितीय) के बाद धारा के राजा सिन्धुराज बने। ये सिन्धुराज ही ''नवसाहसांक'' थे। इन्हीं का चरित इसमें वर्णित किया गया है। पद्मगुप्त ''परिमल'' ने 1005 ईस्वी में इस काव्य की रचना की थी। ये कश्मीर के निवासी थे।

यह काव्य 18 सर्गों में है। परीकथाओं के समान इसका मूल-कथानक सजाया गया है। इसमें नागों के शत्रु वज्राङ्कुश को पराजित करके धारा-नरेश सिन्धुराज के द्वारा नागराज शङ्खपाल की कन्या शशिप्रभा से विवाह करने का चमत्कारी एवं सुन्दर वर्णन है।

श्रृंगार-रस प्रधान इस काव्य में उपमा के मनोहारी वर्णन का चित्रण इस प्रकार किया है–

''नमोऽस्तु साहित्यरसाय तस्मै, निषिक्तमन्तः पृषतापि यस्य।

सुवर्णतां वक्त्रमुपैति साधोर्दुर्वर्णतां याति च दुर्जनस्य।।''

इस पद्य में साहित्य-रस की प्रशंसा कवि ने मुक्तकण्ठ से की है– उस साहित्य रस को नमस्कार है जिसके एक कण से भी अन्तःकरण यदि भींग जाए तो सज्जनों का मुख सुवर्णता (चमत्कारपूर्णता, सुन्दर रंग) पा लेता है और दुष्टों के मुख को विवर्ण कर देता है। भाषा एवं रस की दृष्टि से यह काव्य संस्कृत-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

3.6.5 विक्रमाङ्कदेवचरित

इसके रचयिता महाकवि-बिल्हण हैं। ये काश्मीर-निवासी थे। इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। कल्याण राज्य के चालुक्य-नरेश विक्रमादित्य षष्ठ ने इन्हें ''विद्यापति'' की उपाधि प्रदान की थी। इसी राजा के जीवन पर इन्होंने इस काव्य की रचना की थी। इस ग्रन्थ का रचना-काल 1088 ई॰ के पूर्व माना जाता है। इनकी दो रचनाएँ और प्राप्त होती हैं– (1) कर्णसुन्दरी (2) चौरपञ्चाशिका।

महाकवि बिल्हण अनेक शास्त्रों के पण्डित थे। इनके काव्यों का भारतवर्ष में बहुत व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। स्वयं वे लिखते हैं–

''ग्रामो नासौ न स जनपदः सास्ति नो राजधानी
ततारण्यं न तदुपवनं सा न सारस्वती भूः।
विद्वान्मूर्खः परिणतवया बालकः स्त्री पुमान्वा
यत्रोन्मीलत्पुलकमखिला नास्य काव्यं पठन्ति।।''

विक्रमाङ्कदेवचरित के आरम्भिक सर्गों में विक्रमादित्य की विजय-यात्राओं तथा कल्याण-राज्य की प्राप्ति का वर्णन है। नायक विक्रमादित्य राजकुमारी चन्दलदेवी के स्वयंवर में जाकर वधू के रूप में उसे ले आता है। इसका वर्णन कवि ने उदात्तता एवं पेशलता से किया है। इसके पश्चात् राजा विक्रमादित्य षष्ठ के पिता आहवमल्ल की मृत्यु, चोलों की पराजय इत्यादि ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। दक्षिण-भारत की राजनीति एवं चालुक्य-वंश के बारे में यह काव्य प्रमाणभूत है।

इतिहास और काव्यात्मक वर्णन इस काव्य की विशेषता है। चोल-राज्य के उपद्रव का वर्णन तथा काञ्ची पर विक्रमादित्य का अधिकार ये दोनों इस काव्य के बीज हैं। ऐतिहासिक घटनाओं का सुन्दर समावेश है।

बिल्हण कवि वैदर्भी रीति को मानते हैं। वे कहते हैं–

''अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य, सरस्वती-विभ्रम-जन्मभूमिः।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति, सौभाग्यलाभप्रतिभूः पदानाम्।।''

अर्थात् जो शब्दमाधुर्य के लिए बिना मेघ की वर्षा है, सरस्वती की जन्मभूमि है तथा पदों के लिए सौष्ठव-प्राप्ति की प्रतिभू अर्थात् जमानत देने वाली है, वह वैदर्भी रीति किसी-किसी कवि में ही आविर्भूत होती है।

प्रसाद-गुण-गुम्फित तथा व्यंजना से युक्त वाणी इस काव्य में चार चाँद लगा देते हैं। कश्मीर के बारे में कवि कहते हैं कि कुङ्कुम और केसर तथा काव्य के विलास यहीं अंकुरित होते हैं, दूसरी जगह तो इसका प्ररोह भी देखा नहीं गया है।

प्रथम सर्ग में कवियों के महत्त्व के बारे में कहते हैं कि यह कवियों का ही प्रभाव है कि वे किसी को अमर कर देते हैं। वाल्मीकि कवि ने ही राम को अमर बनाया और कवियों के

अपमान के कारण ही रावण राक्षस बन गया। अतः राजाओं को कभी भी कवियों का अनादर नहीं करना चाहिए।

''लङ्कापतेः सङ्कुचितं यशो यद् यत्कीतिपात्रं रघुराजपुत्रः।

स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः।।''

इस प्रकार यह काव्य इतिहास के पृष्ठों को अपने आँचल में समेटते हुए भारतवर्ष के गौरव को साभिमान प्रकट करता है।

3.6.6 राजतरङ्गिणी

ऐतिहासिक काव्यों में सर्वाधिक प्रामाणिक एवं तथ्यपूर्ण काव्य राजतरङ्गिणी है। यह काव्य सर्वाधिक दीर्घकाल के इतिहास पर प्रमाणिक सूचना देता है। इसके रचयिता महाकवि कल्हण हैं। इसमें कश्मीर राज्य का इतिहास प्राचीनकाल से लेकर अपने समय (1150 ईस्वी) तक प्रस्तुत है। कल्हण के पिता का नाम चणपक (चम्पक) था। ये कश्मीर के राजा हर्षदेव के विश्वासपात्र सेवक थे। वस्तुतः कल्हण का वास्तविक नाम ''कल्याण'' था। इनका जन्म 1100 ई॰ के लगभग हुआ था।

कश्मीर की राजनीति से पृथक् होकर ''अलकदत्त'' नामक विशेष पुरुष के आग्रह से कश्मीर के विकीर्ण एवं प्रकीर्ण साक्ष्यों को एकत्रित कर कल्हण ने राजतरङ्गिणी की रचना की। इसकी रचना तीन वर्षों में पूर्ण हुई, जो 1148 ई॰ से प्रारम्भ हुई थी। इसकी रचना सुस्सल के पुत्र जयसिंह के शासनकाल में हुई थी। इस ग्रन्थ का यह वैशिष्ट्य है कि इसमें लगभग 2500 वर्षों का राजनीतिक-इतिहास प्रमाण के साथ एवं व्यवस्थित क्रम में उपनिबद्ध किया गया है। इसमें 400 वर्ष की घटनाएँ तो तिथिक्रम से उल्लिखित हैं।

इसमें कुल आठ तरंग (खण्ड) है, जिनमें कुल 7826 पद्य है जो मुख्यतः अनुष्टुप् छन्द में हैं। प्रारम्भ के छह तरंग छोटे हैं तथा सातवाँ तथा आठवाँ तरंग क्रमशः बड़े हैं। सातवें तरंग में कुल 1732 श्लोक हैं, तथा आठवें में 3449 पद्य है।

कल्हण ने राजतरङ्गिणी के प्रथम तरंग में लिखा है कि यह काव्य प्राचीन ग्यारह ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा नीलमत पुराण की सहायता से लिखा गया है–

''दृग्गोचरं पूर्वसूरिग्रन्था राजकथाश्रयाः।

मम त्वेकादश गता मतं नीलमुनेरपि।।''

प्रशस्ति, अभिलेख, शिलालेख, दानपात्र इत्यादि साक्ष्यों के आधार पर राजतरङ्गिणी की रचना हुई है। इसी से वे इतिहासकार की प्रशंसा कुछ यूँ करते हैं–

''श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।

भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती।।''

अर्थात् वही गुणी इतिहासकार प्रशंसनीय है जिसकी वाणी न्यायाधीश के समान अतीत घटनाओं में निष्पक्ष है अर्थात् राग एवं द्वेष से सर्वथा मुक्त है। कश्मीर की तात्कालिक स्थिति का वर्णन

इस प्रकार करते हैं– ''कश्मीर के लोग अपने राजा का सम्मान नहीं करते हैं, ये राजभक्त नहीं है, विश्वास करना तो ये जानते तक नहीं हैं। सर्वत्र अराजकता का माहौल है, राज्य के मन्त्रियों में भी परस्पर घोर विरोध है। सैनिकों में अनुशासनहीनता, पुरोहितों में छल, कपट, षड्यन्त्रकारिता है। यहाँ की जनता अब विलासप्रियता में डूब चुकी है। राजकीय सेवक लोभी एवं राजद्रोही हैं। आत्महत्या, पारिवारिक-कलह, विश्वासघात, भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों में कश्मीर डूब चुका है।''

द्वितीय तरंग में प्रतापादित्य नामक राजा का, तृतीय तरंग में गोनन्दीय-वंश का, चतुर्थ तरंग में कर्कोट-राजवंश का, पञ्चम तरंग में उत्पलवंशीय राजाओं का, षष्ठ तरंग में यशस्कर से लेकर रानी दिद्धा का, सप्तम तरंग में लोहरवंश के प्रायः एक सौ वर्षों के शासनकाल का वर्णन है, जो 1003 ई॰ से 1101 ई॰ तक था। इस वंश में संग्रामराज, हरिराज, अनन्त, कलश, उत्कर्ष तथा हर्ष ये छह राजा हुए। अष्टम-तरंग में कल्हण ने स्वयं के युग की घटनाएँ वर्णित की हैं जिनमें उच्चल (1101-11 ई॰) से लेकर जयसिंह (1128-59 ई॰) तक के शासनकाल का सुन्दर वर्णन है।

इसमें वैदर्भी-रीति का बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है। विषय-प्रतिपादन की मुख्यता के साथ प्राञ्जल पदों का अद्भुत वर्णन इस काव्य की विशेषता है।

भाव-पक्ष बहुलता से परिपूर्ण है, रस-परिपाक भी रोमांचकारी है। एक नैतिक शिक्षा का उदाहरण प्रस्तुत है–

''योऽयं परापकरणाय सृजत्युपायं तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाशः।

धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्निर्भूत्वाम्बुदः स शमयेत् सलिलैस्तमेव।।''

इस काव्य में हास्यास्पद, दुष्ट, क्रोधी, लोभी, वञ्चक, प्रजापालक, धर्मात्मा, न्यायप्रिय, स्वार्थी, परोपकारी इन सभी पात्रों का चित्रण पूर्ण तन्मयता से किया गया है। जैसे– दुराचारिणी रानी दिद्धा का वर्णन, छली कायस्थ भद्रेश्वर का वर्णन, इत्यादि।

शान्त-रस प्रधान इस काव्य में पुनर्जन्म, पुण्य, दैवीय शक्ति, शकुनों का मनोहारी वर्णन है। कश्मीर की जनता का मार्मिक चित्रण इस पद्य में हुआ है–

''क्षुत्क्षामस्तनयो वधूः परगृहप्रेष्यावसन्नः सुहृत्,

दुग्धा गौरशनाद्यभावविवशा हम्बारवोद्गारिणी।

निष्पथ्यौ पितरावदूरमरणौ स्वामी द्विषन्निर्जितो

दृष्टो येन परं न तस्य निरये प्राप्तव्यमस्मत्प्रियम्।।''

राजाओं के तथा मन्त्रियों के कार्याचरण, नीतिशास्त्र के अनुरूप राजनियमों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन, जनता-जनार्दन के कल्याण एवं अभ्युदय से युक्त प्रतिपाद्य विषय, राजवंशों के इतिहास

का सूक्ष्म एवं तथ्ययुक्त वर्णन इस काव्य के स्तम्भ हैं। यह काव्य भारतीय-राजतन्त्र के गौरवशाली इतिहास की एक अमूल्य झाँकी है।

3.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में कथासाहित्य एवं ऐतिहासिक काव्यों के बारे में आपने पढ़ा है। इस पाठ में कथासाहित्य के उद्‌भव से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम-दशक तक जो कथासाहित्य लिखा गया है, इसका वर्णन हमने किया है। कथाओं के भेद के अन्तर्गत परिकथा, खण्डकथा, बालकथा, कथानिका, कथा इन भेदों के माध्यम से श्रेणी-विभाग करते हुए कथा के स्वरूप को इंगित करते हुए लोककथा एवं नीतिकथा के उद्‌देश्य, स्वरूप, वैशिष्ट्य तथा उनकी शिक्षा के बारे में बताया गया है।

वस्तुतः कथा जीवन जीने का एक पथ है जिसके माध्यम से हम शिक्षा ग्रहण करके अपने जीवन को सुखमय तथा आनन्दमय कर सकते हैं। पञ्चतन्त्र, हितोपदेश तथा कथासरित्सागर की कथाएँ व्यावहारिक ज्ञान के साथ–साथ मूल्य बोध एवं सामाजिक आचार-विचार की शिक्षा प्रदान करती हैं। कथाओं में आये हुए सुभाषित-वचन तो सोने में सुगन्ध जैसे हैं। भारतीय-ज्ञान-परम्परा में ये कथाएँ अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वेतालपञ्चविंशति नामक कथा बुद्धिवर्धन एवं विवेक को बढ़ाती है। शुकसप्तति नामक कथा के माध्यम से आपने बुरे कार्यों से कथा कैसे बचाती है, यह पढ़ा।

इसके उपरान्त तृतीय इकाई के पंचम प्रक्रम में ऐतिहासिक काव्य के उद्‌भव और विकास के सन्दर्भ में भारतीय इतिहास के गौरवशाली अतीत एवं राजाओं की परम्परा तथा जनता-जनार्दन के भावों के सबल पक्ष को आपने पढ़ा एवं अच्छी तरह से समझा।

रामायण, महाभारत, पुराण, प्रशस्ति, अभिलेख, मुद्रा-पत्र, शिलालेख, स्तम्भ-लेख हमारे ऐतिहासिक काव्यों के बीज हैं। हर्षचरित और विक्रमाङ्कदेवचरित राजाओं के विविध-कार्यों का प्रतिबिम्ब है। ये ऐतिहासिक-काव्य भारतीय इतिहास के स्तम्भ है, जिनके द्वारा आपने कश्मीर के तात्कालिक स्वरूप तथा स्वर्ग जैसे इसके स्वरूप को भली-भाँति समझा। इसी क्रम में राजतरङ्गिणी जैसा महनीय ग्रन्थ भी आपने पढ़ा। यह भी कश्मीर एवं वहाँ के राजाओं, जनता, मन्त्रियों के बारे में समुचित इतिहास को प्रकट करता है।

इस प्रकार आपने प्रस्तुत इकाई के माध्यम से संस्कृत-साहित्य के कथासाहित्य एवं ऐतिहासिक-काव्यों के बारे में, उनकी व्यापकता के विषय में, उनके विविध भावों को पढ़ा, समझा एवं जाना।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. हर्षचरित – श्री शंकरकवि विरचित ''संकेत'' व्याख्या सहित, सम्पादक – जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2012

2. हितोपदेश – सम्पादक–नारायण राम आचार्य, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहरनगर, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2011
3. पञ्चतन्त्र – पं॰ रामचन्द्र झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, षष्ठ संस्करण, 1991
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ॰ उमाशंकर शर्मा ''ऋषि'', चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2008
5. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास–जगन्नाथ पाठक, (सप्तम खण्ड), उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, प्रथम संस्करण, 2000

3.9 अभ्याय प्रश्न

1. कथासाहित्य के उद्भव पर प्रकाश डालिए।
2. पञ्चतन्त्र से हमें क्या शिक्षा मिलती है?
3. ''विक्रमाङ्कदेवचरित काव्य इतिहास में श्रेष्ठ है'' इस कथन को पठितांश के आधार पर सिद्ध कीजिए।
4. राजतरङ्गिणी के काव्य-वैशिष्ट्य का प्रतिपादन कीजिए।

इकाई 4. गद्य तथा चम्पू काव्य

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- गद्य एवं चम्पूकाव्य की उत्पत्ति और विकास का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रमुख गद्य एवं चम्पू काव्यों के प्रणेताओं, उनकी कथावस्तु तथा काव्यगत वैशिष्ट्य के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्कृत काव्य की सुदीर्घ एवं वैविध्यमयी परम्परा से अवगत होंगे।
- उक्त दोनों ही विधाओं के विशिष्ट भाषिक प्रयोगों से अवगत होंगे।

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत के काव्य विवेचकों ने काव्य-शरीर को गद्य, पद्य तथा मिश्र, इन तीन रूपों में व्यवस्थित किया है। यहाँ काव्य की गद्य-विधा की ऐसी महिमा स्वीकार की गई है कि उसे कविता का निकष तक कह दिया गया है। काव्य के इस निकष-ग्रावा पर जिन महाकवियों की प्रतिभा खरी उतरी है, उनकी अनेक कृतियाँ संस्कृत ही नहीं अपितु विश्व-वाङ्मय को समृद्ध बना रही हैं। संस्कृत में गद्यकाव्य के अनेक प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु उनमें से कथा और आख्यायिका ही सहृदयों के लिए अधिक मोदावह रहे हैं।

जहाँ तक मिश्रकाव्य भेद का प्रश्न है, उसके नाटकादिरूप दृश्यकाव्य भेद निश्चय ही कविता-कामिनी के रम्यतम विग्रह हैं परन्तु मिश्र काव्य के ही चम्पू-रूप श्रव्यकाव्य भेद ने भी सहृदयों के लिए एक अलग ही रूप में चित्तावर्जकसामग्री प्रस्तुत की है, जो न तो दृश्यता के चलते नाटकादि में ही समा सकती थी और न पद्यैकमयता के चलते महाकाव्यादि में ही। प्रस्तुत इकाई में आप संस्कृत काव्य की उपर्युक्त दोनों विधाओं की उत्पत्ति, विकास तथा प्रमुख रचनाओं का अध्ययन करेंगे।

4.2 संस्कृत गद्य की उत्पत्ति और विकास

संस्कृत गद्य का प्रथम प्रशस्त रूप हमें यजुर्वेद की संहिताओं में परिलक्षित होता है। छन्दोविधान से रहित वैदिक मन्त्रों को यजुष् कहा जाता है। **‘अनियताक्षरावसानं यजुः’** तथा **‘गद्यात्मकं यजुः’** परिभाषाओं के अनुसार यजुष् में अक्षरों का अवसान सम्बन्धी कोई नियम नहीं होता है।

दूसरे शब्दों में एक वाक्य या चरण में आने वाले शब्दों की सीमा सम्बन्धी बन्धन से मुक्त रचना को यजुष् कहा जाता है। यजुष् एक वैदिक संज्ञा है और यही 'गद्य' का प्राचीनतम उपलब्ध रूप है । इस प्रकार से विषय-वस्तु की दृष्टि से प्राचीन काल में गद्य के निम्नलिखित रूप मिलते हैं –

1.वैदिक गद्य – इसके दो रूप हैं– एक यज्ञ से सम्बद्ध तथा दूसरा चिन्तन एवम् ऊहापोह से सम्बद्ध। पहले प्रकार का गद्य यजु:संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में व दूसरे प्रकार का ब्राह्मणों, आरण्यकों एवम् उपनिषदों में मिलता है। प्रातिशाख्य-ग्रन्थ, कल्प-ग्रन्थ, सूत्र तथा निरुक्त में प्राप्त गद्य को भी इसी कोटि में सम्मिलित किया जा सकता है।

2.पौराणिक गद्य – पुराणों का अधिकांश भाग पद्यमय है परन्तु विष्णुपुराण और भागवतपुराण आदि में यत्र-तत्र गद्य भी उपलब्ध होता है। निश्चय ही यह वैदिक गद्य के अनन्तर गद्य साहित्य के विकास का दूसरा सोपान कहा जा सकता है। यद्यपि इसमें आर्ष प्रयोगों के भी दर्शन होते हैं, तथापि यहाँ लौकिक गद्य के लालित्य, चित्रत्व तथा प्रौढिमा के भी दर्शन सुलभ होते हैं।

3.शास्त्रीय गद्य – यह पूर्वोक्त चिन्तनपरक वैदिक गद्य का ही अगला संस्करण है। सूत्र तथा व्याख्यान की अनेक शैलियों में यह व्यवस्थित हुआ है। पाणिनि की अष्टाध्यायी सूत्र शैली की तथा उस पर निबद्ध महाभाष्य एवं काशिका आदि व्याख्यान शैली की प्रमुख रचनाएँ हैं। विभिन्न दर्शनों के जैमिनि आदि प्रणीत सूत्र तथा उन पर प्रणीत शाबर भाष्य एवं शारीरक भाष्य आदि भी इन्हीं गद्य शैलियों के विशिष्ट रूप हैं। कौटलीय अर्थशात्र को भी इस श्रेणी के गद्य का उल्लेख करते हुए विस्मृत नहीं किया जा सकता। गंगेशोपाध्याय (13 वीं शताब्दी) के नेतृत्व में विकसित हुई नव्यन्याय-शैली शास्त्रीय गद्य का एक अलग ही अवतार प्रस्तुत करती है।

4.शिलालेखीय गद्य – यह राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिए उपादेय था। प्राचीन शिलालेखों में अनेक गद्य ऐसे हैं, जिनका गद्य काव्यभाषा के शिल्प और सौन्दर्य से समन्वित दिखाई पड़ता है। विशेष रूप से रुद्रदामन के शिलालेख (150 ई.) में अलंकृत गद्य-शैली का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार समुद्रगुप्त के शिलालेख संस्कृत गद्य की विकास यात्रा में अत्यन्त महत्त्व रखते हैं। हरिषेण की प्रयाग-प्रशस्ति भी प्रौढ, परिष्कृत और उदात्त गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण

है। समुद्रगुप्त (360 ई.) के द्वारा बनवाये गए स्तम्भ का वर्णन करते हुए हरिषेण कहते हैं– **''सर्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्त-निखिलावनितलां कीर्तिमितभुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।''** यहाँ विजयस्तम्भ के लिए पृथिवी के ऊपर उठे बाहु का मनोहर रूपक रचा गया है।

5. साहित्यिक गद्य – वेद से आरम्भ हुई संस्कृत गद्य की विकास यात्रा शनैः-शनैः अपने हृदयावर्जक मञ्जुल स्वरूप को प्राप्त कर जाती है। इसी को साहित्यिक गद्य कहा जाता है। आगे चलकर यह अनेक साहित्यिक विधाओं के रूप में प्रतिफलित हो जाता है। इनमें से कथा एवम् आख्यायिका उसकी सर्वाधिक प्रख्यात विधाएँ हैं। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में वासवदत्ता (यह शूद्रक कृत वासवदत्ता से भिन्न है), सुमनोत्तरा तथा भैमरथी इन तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। ये कृतियाँ यद्यपि बहुत पहले ही नामशेष हो चुकी हैं, तथापि पतञ्जलि (प्रथम शताब्दी) का उक्त उल्लेख इस तथ्य को उद्घाटित कर देता है कि संस्कृत के साहित्यिक गद्य का ऐतिह्य भी दो सहस्राब्दियों से भी अधिक प्राचीन है। उपर्युक्त के अतिरिक्त भी अन्य बहुत सी अनुपलब्ध गद्य रचनाओं के उल्लेख यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं– उदाहरणार्थ– मनोवती (अवन्तिसुन्दरी कथा में उद्धृत), तरङ्गवती तिलकमञ्जरी में उद्धृत आदि।

शूद्रक-कृत वासवदत्ता, दण्डी-कृत दशकुमारचरित तथा बाण-कृत हर्षचरित और कादम्बरी आदि साहित्यिक संस्कृत-गद्य के शाश्वत प्रकाश-स्तम्भ रहे हैं। आगे चलकर यह परम्परा धनपाल-कृत तिलकमञ्जरी, वादीभसिंहसूरि-कृत गद्यचिन्तामणि, वामनभट्टबाण-कृत वेमभूपालचरित, अम्बिकादत्तव्यास-कृत शिवराजविजय, विश्वेश्वरपाण्डेय-कृत मन्दारमञ्जरी, हृषीकेशभट्टाचार्य-कृत प्रबन्धमञ्जरी, पण्डिताक्षमाराव-कृत कथामुक्तावली तथा डा. रामशरणत्रिपाठि-कृत कौमुदीकथाकल्लोलिनी आदि रचनाओं के द्वारा अत्यन्त समृद्ध होती चली गई है।

इस प्रकार साहित्यिक संस्कृत गद्य के विषय में यह कहा जा सकता है कि जहाँ वैदिक साहित्य इसका पितामह अथवा प्रपितामह है, वहीं वासवदत्ता, कादम्बरी, तिलकमञ्जरी आदि इसकी सुन्दरतम सन्ततियाँ हैं।

4.3 प्रमुख गद्यकाव्य

वास्तव में सुबन्धु, दण्डी तथा बाण ने गद्यकाव्य का जो स्वरूप अपनी कृतियों में स्थापित कर दिया था, वह संस्कृत गद्यकाव्य के एक मानक के रूप में स्थापित हो गया। आगे चलकर धनपाल आदि ने उक्त मानक के अनुसरण में ही स्वयं को कृतार्थ समझा। इनमें से कतिपय कवियों द्वारा प्रणीत प्रमुख कृतियों पर नीचे यथेष्ट प्रकाश डाला जा रहा है –

4.3.1 दशकुमारचरित

यह दण्डी द्वारा रचित गद्यकाव्य है जिसमें कथा और आख्यायिका नामक दोनों ही विधाओं के धर्म अनुस्यूत दिखाई देते हैं (वैसे भी काव्यादर्श के प्रथम परिच्छेद में उन्होंने व्यक्त किया ही है कि कथा एवं आख्यायिका इन भेदक संज्ञाओं में उनकी कोई आस्था नहीं है)। दशकुमारचरित के कर्ता दण्डी हैं, इसमें कोई विवाद नहीं है परन्तु इसका सम्पूर्ण कलेवर उनके द्वारा ही प्रणीत हुआ हो, इसमें विद्वानों की विप्रतिपत्ति है। इसके वर्तमान स्वरूप में तीन भाग हैं– 1. पाँच उच्छ्वासों वाली पूर्वपीठिका 2. आठ उच्छ्वासों वाला मध्यभाग तथा 3.उत्तरपीठिका।

ईगलिंग, अगाशे तथा विल्सन आदि के नेतृत्व में विद्वानों के विचार हैं कि दण्डी की मूल कृति में से उक्त मध्यभाग ही वर्तमान में अवशिष्ट है। कथा की पूर्ति के लिए उस अवशिष्ट भाग के आरम्भ और अन्त में प्रक्षिप्त अंशों की योजना की गई है। उक्त विद्वानों ने अपनी इस मान्यता का आधार निम्नलिखित तथ्यों को बताया है–

1.कतिपय पाण्डुलिपियों में पूर्वपीठिका तथा उपसंहार भाग प्राप्त नहीं होते हैं।

2. पूर्वपीठिका में वंशावली का जो उल्लेख प्राप्त होता है, वह मध्य भाग में प्राप्त नामावली से कहीं-कहीं भिन्न है।

3. तथाकथित प्रक्षिप्त भागों में व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियाँ प्राप्त होती हैं।

4. उक्त प्रक्षिप्ताशों की पाण्डुलिपियों में पाठ-भेदों की बहुलता है।

5. प्रक्षिप्त भागों में मूल भाग की अपेक्षा शैलीगत शिथिलता दृष्टिगोचर होती है।

पर सभी विद्वान् उक्त युक्तियों तथा उनके माध्यम से की गई स्थापना से सहमत हों, ऐसा नहीं है। उपर्युक्त के विपरीत वे ग्रन्थ की पूर्वपीठिका तथा उपसंहार सहित सम्पूर्ण वर्तमान स्वरूप को दण्डी के द्वारा ही प्रणीत मानते हैं।

दशकुमारचरित की कथा संक्षेप में इस प्रकार है– मगधदेश की राजधानी पुष्पपुरी (जिसका वर्तमान नाम पटना है) पर राजहंस नामक राजा शासन किया करता था। धर्मपाल, पद्मोद्भव तथा सितवर्मा उसके तीन मन्त्री थे।

इनमें से धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल, पद्मोद्भव के सुश्रुत और रत्नोद्भव तथा सितवर्मा के सुमति और सत्यवर्मा पुत्र थे। धर्मपाल पुत्र कामपाल अपनी यायावर प्रकृति के चलते घर छोड़कर चला जाता है। रत्नोद्भव व्यापारी बन गया और सत्यवर्मा संसार की असारता से विरक्त होकर तीर्थाटन पर चला गया। शेष चार मन्त्रिपुत्र (सुमन्त्र, सुमित्र, सुश्रुत और सुमति) बड़े होकर राजहंस के मन्त्री बने। राजहंस निःसन्तान था और इससे अत्यन्त दुःखी रहा करता था।

प्रबन्ध में मालव के राजा मानसार द्वारा राजहंस पर आक्रमण, राजहंस द्वारा उसको बन्दी बना लिया जाना, पुनः दयावश उसे मुक्त कर देना, मानसार द्वारा शिवकृपा से मारक गदा की प्राप्ति, राजहंस पर फिर से आक्रमण, युद्ध में राजहंस का घायल होकर परास्त होना, राजहंस की रानियों द्वारा पति को मृत समझकर वन में सती होने की तैयारी करना, राजहंस और मन्त्रियों का वन में पहुँचना तथा रानियों की रक्षा, राजहंस द्वारा एक तपस्वी वामदेव की शुश्रूषा, वामदेव द्वारा राजहंस को ऐसे पुत्र की प्राप्ति की भविष्यवाणी करना, जो खोये राज्य को फिर से जीतने वाला होगा, वामदेव की भविष्यवाणी का सत्य होकर राजहंस को पुत्र की प्राप्ति, पुत्र का नाम राजवाहन रखा जाना आदि वृत्तान्त बड़े ही चित्तावर्जक ढंग से प्रस्तुत हुए हैं।

लगभग इसी समय चार मन्त्रियों के चार पुत्र हुए। उनके नाम मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, विश्रुत और प्रमति रखे गए। राजहंस राजवाहन सहित इन चार मन्त्रिपुत्रों का भी पालन करने लगे। तभी उनके घुमक्कड़ मन्त्रिपुत्र कामपाल के पुत्र अर्थपाल समुद्री व्यापार हेतु बाहर गए। रत्नोद्भव का पुत्र पुष्पोद्भव और तीर्थ यात्रा पर गए सत्यवर्मा का पुत्र सोमदत्त अपने-अपने जनकों के विभिन्न प्रकार से दुर्घटना ग्रस्त हो जाने के पश्चात् राजहंस के पास लाए गए।

इसी समय राजहंस को ज्ञात हुआ कि मानसार के साथ युद्ध में उनके हारने से खिन्न उनका मित्र मिथिला-नरेश प्रहारवर्मा हताश होकर अपने परिवार के साथ राज्य की ओर लौट रहा था। मार्ग में शबर नरेश ने आक्रमण कर उसे मार दिया। उस कष्ट की अवस्था में प्रहारवर्मा की रानियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया और फिर वे भी दिवंगत हो गईं। वे दोनों बालक उपहारवर्मा और अपहारवर्मा राजहंस के पास लाए गए। इस प्रकार राजहंस ने अपने एक पुत्र के साथ-साथ सात मन्त्रि पुत्रों तथा प्रहारवर्मा के दो पुत्रों का, इस प्रकार कुल दस कुमारों का पालन-पोषण किया। ये दसों कुमार बड़े होकर दिग्विजय के लिए निकले और अपने अभियान के समय सभी एक दूसरे से अलग हो गए। अन्त में ये सभी एक-एक करके राजवाहन को मिलते गए और अपनी साहसिक विजय-गाथाएँ सुनाते रहे। इन्हीं गाथाओं का एकत्र सङ्गुम्फ ही दशकुमारचरित नामक प्रबन्ध है।

पूर्वपीठिका में पाँच उच्छ्वास हैं। कुमारोत्पत्ति नामक प्रथम उच्छ्वास में राजवाहन का जन्म, द्विजोपकृति नामक द्वितीय उच्छ्वास में मन्त्रिपुत्रों का जन्म, सोमदत्त चरित नामक तृतीय उच्छ्वास में सोमदत्त के साहसिक कार्य, पुष्पोद्भव चरित नामक चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्पोद्भव की साहसिक कथा तथा अवन्तिसुन्दरीपरिणय नामक पञ्चम उच्छ्वास में राजवाहन का अवन्तिसुन्दरी से विवाह।

ग्रन्थ के अष्टोच्छ्वास में दशकुमारचरित नामक मध्यवर्ती मुख्य भाग में कुमारों का चरित वर्णित है– 1.राजवाहन-चरित 2. अपहारवर्मा-चरित 3. उपहारवर्मा-चरित 4.अर्थपाल-चरित 5. प्रमति-चरित 6.मित्रगुप्त-चरित 7.मन्त्रगुप्त-चरित 8.विश्रुत-चरित।

उत्तरपीठिका नामक ग्रन्थ के उपसंहार भाग में सभी कुमारों के रानी वसुमती तथा राजहंस से मिलने, राजा द्वारा अपना उत्तराधिकार सौंपने एवम् उनके वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करने आदि का वृत्तान्त वर्णित है।

दशकुमारचरित में प्रयुक्त भाषा के विषय में कहा जा सकता है कि यहाँ कवि भाषा का दास नहीं अपितु भाषा उसके अधीन है। इस कारण वह भाषा के किसी आडम्बर में सहसा नहीं फँसता प्रत्युत वर्ण्य-विषयक स्वविवेक से उसका उपयोग करता है। भाषा की सहजता एवं प्रसन्नता दण्डी को वाल्मीकि-परम्परा का उचित उत्तराधिकारी सिद्ध करती है। प्रकृति-वर्णन

में दशकुमारचरित की शैली समास-भूयसी अथ च ओजः कान्तिमती होती हुई वर्ण्य के स्वभाव की जहाँ रक्षा करती है वहीं अन्य प्रकार के स्थलों पर माधुर्यसौकुमार्य-उपपन्ना वह अन्य प्रकार से अपनी वर्णनीय वस्तु के शील की श्रीवृद्धि करती है। इस गद्यकाव्य में दण्डी ने समस्तगुणा वैदर्भी रीति का आश्रयण किया है। वस्तुतः यहाँ दण्डी भाषा और शैली का एक आदर्श प्रस्तुत करते परिलक्षित होते हैं। उनकी प्रोक्त बहुविध विशेषताओं के चलते ही उन्हें वाल्मीकि एवं व्यास की कोटि का ही अग्रणी कवि माना गया है। जैसा कि प्रसिद्ध है–

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत् ।

कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।

4.3.2 वासवदत्ता

वासवदत्ता नामक अलंकार-सघन कथा-कृति के प्रणेता महाकवि सुबन्धु हैं। कुछ विद्वान् इन्हें काश्मीरिक मानते हैं तो कतिपय मध्यदेशीय परन्तु इनकी एकमात्र रचना वासवदत्ता के अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वे दाक्षिणात्य थे। विद्वानों के मतानुसार वासवदत्ता तथा उसके प्रणेता का काल ईसा की छठीं अथवा सातवीं शताब्दी होना चाहिए। सुबन्धु गौडी रीति के कवि हैं। उनकी समास-भूयिष्ठा ओजोमयी गौडी रीति अलंकारों के प्राचुर्य से प्रोद्भासित है। स्वयं कवि ने इस रचना में प्रत्यक्षरश्लेष की प्रतिज्ञा की है–

प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्ध-विन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् । –(वासवदत्ता– 13)

इसमें राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु (नायक) और राजा शृंगारशेखर की पुत्री (नायिका) राजकुमारी वासवदत्ता के प्रेम तथा तदनन्तर विवाह का वर्णन है। इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है–

वासवदत्ता गन्धर्वदेश की राजकुमारी है। कन्दर्पकेतु स्वप्न में राजकुमारी को देखकर उस पर आसक्त हो जाता है। वह अपने मित्र मकरन्द के साथ वासवदत्ता की खोज में निकलता है। वे विन्ध्य पर्वत पर पहुँचते हैं तथा उन्हें शुक-सारिका के संवाद से यह ज्ञात होता है कि वासवदत्ता ने भी स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखा है और तमालिका नामक सारिका उन्हें ढूँढ़ने के लिए निकली है। वासवदत्ता और कन्दर्पकेतु का मिलन पक्षि-दम्पती की सहायता से होता है। राजकुमार कन्दर्पकेतु को जब यह पता चलता है कि वासवदत्ता के पिता उसका विवाह

विद्याधरों के राजा पुष्पकेतु से करना चाहते हैं तो वे दोनों एक जादू के घोड़े पर चढ़कर भाग जाते हैं और विन्ध्य पर्वत पर पहुँचते हैं। कुछ समय के बाद कन्दर्पकेतु को सोता हुआ छोड़कर वासवदत्ता वन देखने जाती है। अकस्मात् वह किरातों के मध्य में फँस जाती है। किरातों के दो दलों के मध्य उसे पाने के लिए युद्ध होता है। वासवदत्ता छिपकर वहाँ से निकल जाती है और वासवदत्ता ऋषि-आश्रम में अवांछित प्रवेश के फलस्वरूप पाषाणशिला के रूप में परिणत हो जाती है। विप्रयोग से व्यथित कन्दर्पकेतु अपना प्राणान्त करने को प्रवृत्त होता है, परन्तु आकाशवाणी उसे प्राणान्त करने से बचाती है और दोनों के पुनर्मिलन का आश्वासन देती है। कुछ समय के पश्चात् एक दिन सहसा उसका स्पर्श पाकर वह पाषाणशिला पुनः वासवदत्ता के रूप में कायान्तरित हो जाती है। उसी समय मकरन्द भी वहाँ पहुँच जाता है। तीनों कन्दर्पकेतु की राजधानी में पहुँचते हैं और वहाँ वे अपना शेष जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

सुबन्धु की वासवदत्ता प्रौढ पाण्डित्य युक्त गौडी रीति प्रधान रचना है। इनकी भाषा में समास बहुलता, क्लिष्ट पद-विन्यास और श्रम साध्यता फलतः ओजस्विता पदे-पदे परिलक्षित होती है। इसमें लम्बे प्रकृति वर्णन, स्त्री-सौन्दर्य वर्णन और नगरी-वर्णन आदि ऐसे विषय हैं, जो कवि की उद्दाम वर्णना चातुरी की प्रगल्भ प्रवृत्ति के स्वाभाविक स्थल हैं। शूद्रक की शैली में विस्तृत संवादात्मक काव्य स्थलों की विशिष्ट भूमिका है। श्लेष, विरोध और परिसंख्या आदि अलंकारों के प्रयोग के प्रति कवि का ससंकल्प संरम्भ होने के कारण रस को अपनी सत्ता और महत्ता के लिए अपेक्षित अवकाश नहीं मिल पाया है। जिस श्लेषालंकार के लिए सुबन्धु की ख्याति है, उसका एक निदर्शन इस प्रकार है– '**कुमारमयूर इव समारूढशरजन्मा, महातपस्वीव प्रशमितरजः प्रसरः....लङ्केश्वर इव समेघनाद, विन्ध्य इव घनश्यामः, युवतिजन इव पीनपयोधरः, समाजागाम वर्षासमयः।**' (वासवदत्ता)

कार्तिकेय से अधिष्ठित कार्तिकेय के मोर के तुल्य सरकण्डों की अधिकता से युक्त, रजोगुणरहित तपस्वी तुल्य धूल को शान्त करने वाला, मेघनाद से युक्त रावण के तुल्य, विन्ध्य पर्वत के तुल्य बादलों से नीलवर्ण, युवतियों के तुल्य बादलों से युक्त वर्षा ऋतु आई है। इसी प्रकार उनका परिसंख्या का प्रयोग भी दर्शनीय है। शृंगार-शेखर के राज्य में दुर्गुण विभिन्न स्थानों पर थे, प्रजा में नहीं थे। इसका वर्णन भी द्रष्टव्य है –

'यत्र राजनि...शशिनः कन्यातुलारोहणम्, योगेषु शूलव्याघातचिन्ता,दक्षिणवामकरणं दिङ्निश्चयेषु, दानच्छेदः करिकपोलेषु, शरभेदो दधिषु, श्रृङ्खलाबन्धो वर्णग्रथनासु, उत्प्रेक्षाक्षेपः कव्यालङ्कारेषु,लक्षदानच्युतिः सायकानां,क्विपां सर्वविनाशः, कोषसङ्कोचः कमलाकरेषु,न जनेषु. ...., ।' (वासवदत्ता ,पृ.128) इसी प्रकार अन्य अलंकारों के संयोजन में भी कवि को महारथ अधिगत है। सुबन्धु का यह अलंकार विन्यास क्लिष्ट पदावली के साथ-साथ उनकी कोमल कान्त पदावली का भी विभूषण बना है।

4.3.3 हर्षचरित

संस्कृत गद्य के चूड़ान्त कवियों में बाणभट्ट अन्यतम हैं। गद्यकाव्य ही नहीं अपितु काव्यमात्र की दृष्टि से बाण का कविकर्म इतना सर्वातिशायी है कि उनके लिए यह कथन प्रसिद्ध है– **'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'** अर्थात् समस्त जगत् बाण की जूठन भर है। हर्षचरित बाण की प्रथम रचना है इसके अतिरिक्त उन्होंने कादम्बरी नाम की विख्याततम कथा कृति का भी प्रणयन किया है। उनके नाम से चण्डीशतक नामक स्तुतिकाव्य भी प्राप्त होता है। हर्षचरित को बाणभट्ट ने स्वयं आख्यायिका के नाम से अभिहित किया है। तथा उसके उच्छ्वासों में विभक्त होने एवं वक्त्र छन्द से युक्त होने का भी संकेत किया है–

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वत ।

कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ।। (हर्षचरित 1/10)

ऐतिहासिक वृत्त पर आश्रित यह प्रबन्ध आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। इसके प्रथम दो उच्छ्वासों में महाकवि बाणभट्ट का वंशानुकीर्तन है। इस क्रम में वहाँ बाण के वंश प्रवर्तक पुरातन पुरुष वत्स से आरम्भ करके बाण के जन्म तथा सम्राट हर्षवर्धन के साथ उनके सम्पर्क में आने तक की कथा वर्णित है। तृतीय उच्छ्वास– इसमें हर्षचरित की वास्तविक कथा आरम्भ होती है। यहाँ हर्ष के पूर्वज राजा पुष्पभूति का वर्णन है। इसमें पुष्पभूति और शैव योगी भैरवाचार्य का सुन्दर चित्रण है। चतुर्थ उच्छ्वास– इसमें पुष्पभूति के वंशज राजाओं का केवल अस्पष्ट संकेत है। तदनन्तर महाराज प्रभाकरवर्धन के शौर्य का वर्णन है। प्रभाकरवर्धन की पत्नी रानी यशोवती तथा उनसे दो पुत्रों राज्यवर्धन और हर्षवर्धन एवम् एक पुत्री राज्यश्री के होने तथा पुनः राज्यश्री का विवाह मौखरि-वंशज राजा ग्रहवर्मा से होने का वर्णन भी इसी

उच्छ्वास में है। पञ्चम उच्छ्वास– इसमें हूणों के वधार्थ राज्यवर्धन का प्रस्थान, हर्ष का उसके साथ कुछ दूर जाना और मृगया खेलना, इसी समय पिता की रुग्णता की सूचना मिलना, हर्ष का वापस लौटना, माता यशोवती का पति की मृत्यु के पूर्व ही सती होने का संकल्प, राजा प्रभाकरवर्धन का स्वर्गवास, हर्ष की प्रार्थना को अस्वीकार कर यशोवती का सती होना तथा हर्ष का विलाप वर्णित है। षष्ठ उच्छ्वास– इसमें हूण विजयकर राज्यवर्धन का लौटना, पितृ शोक से विह्वल होना, राज्यभार हर्ष को सौंपना, मालव-नरेश द्वारा ग्रहवर्मा की हत्या, राज्यश्री को बन्दी बनाना, राज्यवर्धन का मालव-नरेश के वधार्थ भण्डि के साथ सेना-सहित प्रस्थान, मालव-राजा को हराना, लौटते समय गौड राजा (शशांक) द्वारा छलपूर्वक राज्यवर्धन की हत्या तथा गौड नरेश पर आक्रमण का निर्णय वर्णित है। सप्तम उच्छ्वास– इसमें हर्ष की सेना का प्रस्थान, प्राग्ज्योतिष के राजा द्वारा एक दिव्य छत्र हर्ष को भेंट किया जाना, भण्डि का आगमन और राज्यवर्धन की हत्या का विवरण देना तथा राज्यश्री के सपरिवार विन्ध्य-वन में चले जाने की सूचना देना, राज्यश्री को ढूँढने के लिए हर्ष का प्रस्थान तथा गौड नरेश पर आक्रमण के लिए भण्डि को आदेश देना वर्णित है। अष्टम उच्छ्वास– इसमें हर्ष का विन्ध्यवन में जाना, ग्रहवर्मा के बाल-मित्र बौद्ध मुनि दिवाकरमित्र के आश्रम में पहुँचना, एक भिक्षुक द्वारा राज्यश्री के सपरिवार सती होने की तैयारी की सूचना पाना, हर्ष का दौड़कर जाना और राज्यश्री को सती होने से बचाना, दिवाकर मित्र का राज्यश्री को सान्त्वनाप्रद उपदेश और हर्ष का राज्यश्री के साथ लौटकर आना वर्णित है। यहीं पर कथा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार हर्षचरित ऐतिहासिक वृत्त पर समवलम्बित आख्यायिका नाम का गद्यकाव्य है।

4.3.4 कादम्बरी

कादम्बरी बाणभट्ट की अमर कृति है। यह सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय की उत्कृष्ट गद्य रचना है। जिसका उपजीव्य गुणाढ्य की बृहत्कथा है। बृहत्कथा की यह कथा कथासरित्सागर (59/122-178) तथा बृहत्कथामञ्जरी (16/183) में अंकित है। इसमें तीन जन्मों की कथा वर्णित है।

यह कथा दो भागों में विभक्त है– पूर्वभाग तथा उत्तरभाग जो बाणपुत्र पुल्लिन्दभट्ट द्वारा रचित माना जाता है। सम्पूर्ण कादम्बरी की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है–

कथामुख– एक दिन विदिशा के राजा शूद्रक नवप्रभात की स्वर्णिम बेला में राजसभा के धर्मासन पर विराजमान थे। उसी समय एक चाण्डालकन्या ने सभामण्डप में प्रवेश किया तथा वह अपने साथ वैशम्पायन नामक एक अद्भुत मेधावी शुक को लेकर आई थी। उस शुक ने अपना दाहिना पैर उठाकर राजा की प्रशंसा में एक आर्या नामक छन्द पढ़ा। शुक के इस शास्त्र-ज्ञान और व्यवहार को देखकर राजा शूद्रक ने उसके वृत्तान्त को जानने का कौतूहल प्रकट किया। उत्तर में वैशम्पायन ने राजा को अपने जन्म से लेकर जाबालि के आश्रम तक पहुँचने का इतिवृत्त कह सुनाया। इसके बाद उसने जाबालि ऋषि के द्वारा वर्णित अपने पूर्वजन्म का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया –

पूर्वार्ध की कथा– उज्जयिनी में तारापीड नाम के एक राजा थे। उनकी महारानी का नाम विलासवती था। उनके बृहस्पतिवत् बुद्धिमान् मन्त्री शुकनास एवं उनकी पत्नी मनोरमा थीं। राजा निःसन्तान थे, इसीलिए महारानी सदैव चिन्तित रहती थीं। राजा ने रानी को देवार्चन का परामर्श दिया। कुछ दिनों के बाद उन्हें चन्द्रापीड नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। उसी दिन महामन्त्री शुकनास को भी पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम वैशम्पायन था। दोनों का पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा एक साथ हुई। दोनों विद्याओं में पारंगत हो गए। अध्ययन समाप्ति के पश्चात् राजा तारापीड ने युवराज का राज्याभिषेक किया। अभिषेक के समय मन्त्री शुकनास ने चन्द्रापीड को अत्यन्त सारगर्भित उपदेश प्रदान किया। उसी समय चन्द्रापीड को इन्द्रायुध नामक घोड़ा और पत्रलेखा नामक दासी भी प्रदान की गई। चन्द्रापीड और वैशम्पायन दिग्विजय के लिए निकल पड़े। इस विजय-यात्रा में युवराज ने राजाओं को परास्त करके उन्हें कर देने के लिए बाध्य किया। इस क्रम में वे हिमालय पर्वत के पास कुछ दिन तक विश्राम के लिए रुके रहे। किन्नरयुगल का पीछा करते हुए इन्द्रायुध पर सवार चन्द्रापीड अच्छोद सरोवर पर पहुँचा। वहाँ एक युवा तपस्विनी महाश्वेता से उसका परिचय हुआ। महाश्वेता ने आत्मवृत्त-निवेदन करते हुए चन्द्रापीड को बताया कि पुण्डरीक नामक एक ऋषिकुमार से उसका प्रेम हो गया था, परन्तु मिलने से पूर्व ही पुण्डरीक कामपीडा से दिवंगत हो गया। तब से वह इस अच्छोद सरोवर पर तप कर रही है। तत्पश्चात् महाश्वेता अपनी सखी कादम्बरी से मिलाने के लिए चन्द्रापीड को ले जाती है। कादम्बरी ने स्वयं अपनी सखी महाश्वेता के कारण कौमार्य-व्रत धारण किया हुआ था। प्रथम मिलन में ही चन्द्रापीड और

कादम्बरी के हृदय में एक-दूसरे के प्रति नैसर्गिक मधुर आकर्षण उत्पन होता है। इसी समय पिता के बुलाने पर चन्द्रापीड उज्जयिनी लौटता है और सेना सहित वैशम्पायन को बाद में आने के लिए छोड़ देता है। ताम्बूलवाहिनी पत्रलेखा कादम्बरी का प्रेम-सन्देश लाती है। यहीं पूर्वार्ध भाग का अवसान होता है।

उत्तरार्ध कथा – जब वैशम्पायन बहुत दिनों के बाद भी नहीं लौटा तो चिन्तित चन्द्रापीड उसकी खोज में पुनः अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है। वहाँ महाश्वेता उसे बताती है कि पीछे वैशम्पायन उस पर आसक्त होकर एक दिन उससे प्रणय-याचना करता है। बहुत निषेध करने पर भी उसके न मानने पर उस (महाश्वेता) के द्वारा वैशम्पायन को शुक होने का शाप दे दिया गया है। मित्र-दुर्गति के इस श्रवण से चन्द्रापीड भी तुरन्त निष्प्राण हो जाता है। तभी कादम्बरी वहाँ आती है और प्रिय के वियोग में प्राण देना चाहती है। उसी समय आकाशवाणी उसे रोकती है और आश्वासन देती है कि शीघ्र ही तुम दोनों सखियों का अपने-अपने प्रेमियों से पुनर्मिलन होगा। (यहाँ जाबालि द्वारा वर्णित कथा समाप्त हो जाती है)

ऋषि जाबालि से अपने पूर्व-जन्म का विवरण सुनते ही शुक को महाश्वेता की स्मृति सताने लगती है। शुक राजा शूद्रक से कहता है कि मेरे महाश्वेता से मिलने के लिए अधीर होकर प्रस्थान करने की दशा में मुझे इस चाण्डालकन्या के द्वारा पकड़ लिया गया है और यह मुझे आपके पास उपहार के रूप में लेकर आई है। तत्पश्चात् चाण्डालकन्या राजा को बताती है कि वह पुण्डरीक की माता लक्ष्मी है तथा पुण्डरीक उस जन्म का वैशम्पायन एवं इस जन्म का तोता है। राजा शूद्रक स्वयं पूर्वजन्म का चन्द्रापीड है जो कभी चन्द्रमा था परन्तु शापवशात् भूतल पर आया था। यह सुनते ही राजा शूद्रक को कादम्बरी की तीव्र स्मृति हो उठी और वे प्राण हीन हो गए। उधर चन्द्रापीड की निष्प्राण देह में पुनः प्राण का सञ्चार हो जाता है। शुक-कथा की समाप्ति के अनन्तर शापावधि भी पूरी हो जाती है। शापावसान के परिणाम स्वरूप शुक भी पुनः पुण्डरीक हो जाता है। इस प्रकार चन्द्रापीड-कादम्बरी और पुण्डरीक-महाश्वेता का पुनर्मिलन हो जाता है। इस प्रकार उक्त कादम्बरी में बाणभट्ट की प्रतिभा अपने उपजीव्य का आधार ग्रहण कर उस पर सौध का निर्माण कर डालती है, यह देखते ही बनता है।

हर्षचरित तथा कादम्बरी के प्रणेता बाणभट्ट पाञ्चाली रीति के कवि हैं। पाञ्चाली रीति में शब्द और अर्थ का समान गुम्फ अभीष्ट होता है जैसा कि कहा भी है–

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते ।

शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।

इस रीति में शब्द के अनुरूप अर्थ तथा अर्थ के अनुरूप शब्द हुआ करते हैं। स्पष्ट है कि यह रीति शब्द और अर्थ का समन्वय करती है बाण इसके दक्ष शिल्पकार हैं। बाणभट्ट ने हर्षचरित के एक प्रस्तावनात्मक श्लोक में गद्य के अभीष्ट समस्त वैशिष्ट्यों का समुचित संग्रह कर दिया है–

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।। (हर्षचरित 1/8)

एतदनुसार नवीन अर्थ, अग्राम्य जाति, अक्लिष्ट श्लेष, स्फुट रस और विकट अक्षरबन्ध– ये समस्त (गद्य वैशिष्ट्य हैं, जिनका) एक ही रचना में निबन्धन करना दुष्कर है। पर कहना ही होगा कि बाणभट्ट की कविता इस दुष्कर कर्म की ही साधना में तत्पर है। बाणभट्ट संस्कृत के सर्वाधिक लोकाभिज्ञ कवियों में अन्यतम हैं। यही कारण है कि हर्ष के आश्रय से पूर्व उन्होंने जितना लोकावेक्षण किया था (तथा इस क्रम में वे आवारा कहे जाने लगे थे), वह समग्र लोक उनकी प्रतिभा से आलोकित हो तत्प्रणीत दोनों ही गद्य काव्यों में प्रतिपद भास्वर दिखाई देता है। रही शास्त्र-व्युत्पत्ति की बात तो वह बाण की निजी काव्य शैली का सहज श्रृंगार बनकर प्रस्तुत हुई है। उक्त सब में बाण की प्रगल्भता का ही यह सहज परिणाम है कि उनके विषय में **'वाणी बाणो बभूव'** तथा **'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'** सदृश आभाणक सहृदयों के कर्णाभरण बने।

4.3.5 शिवराजविजय

शिवराजविजय के रचयिता अम्बिकादत्त व्यास हैं। इनका समय 1858 ई. से 1900 ई. निर्धारित है। संस्कृत जगत् के आधुनिक साहित्यकारों में अम्बिकादत्त व्यास अग्रगण्य हैं। इनमें प्राचीनता और नवीनता दोनों का समन्वय मिलता है। इन्हें सर्वाधिक ख्याति शिवराजविजय की रचना से प्राप्त हुई। इसकी रचना उन्होंने 1898 ई. में की थी। सन् 1900 ई. में इसका प्रकाशन

सम्पन्न हुआ। यह इतिहास पर अवलम्बित औपन्यासिक कृति है। अम्बिकादत्त व्यास को उपन्यास-विधा की प्रेरणा बंग्ला उपन्यासों से प्राप्त हुई थी। वैसे स्वयं उनके मत में बाण-कृत कादम्बरी भी 'उपन्यास' ही है–

उपन्यासपदेनापि तदेव परिकथ्यते।

यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजजयो मम।।

शिवराजविजय में शिवाजी का चरित वर्णित है। इसमें कुल तीन विराम हैं तथा प्रत्येक विराम में चार-चार निःश्वास हैं। इसमें दो स्वतन्त्र कथाएँ समानान्तर रूप से चलती हैं, जो एक दूसरे की पूरक हैं। एक का कथानक रामसिंह से और दूसरे का शिवाजी से सम्बद्ध है। इसके मुख्य पात्र हैं– शिवराज (अर्थात् शिवाजी), गौरसिंह,अफजल खाँ, शाइस्ता खाँ, यशवन्तसिंह, रोशनारा आदि। इसका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है–

दक्षिण में तत्कालीन शासकों के अत्याचारों से उद्विग्न होकर शिवाजी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष आरम्भ करते हैं। वे अपने कार्य में सफल भी होते हैं। शिवाजी की सफलता से सन्तप्त बीजापुर का शासक उन्हें मारने के लिए अफजल खान को भेजता है, जिसका शिवाजी वध कर देते हैं। अनेक प्रासंगिक कथाओं के अन्त में शिवाजी के द्वारा सम्पूर्ण क्षेत्र की मुक्ति का वर्णन है। इसमें ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त अनेक कल्पनाप्रसूत पात्र भी कथानक में जोड़े गए हैं। शिवराजविजय के द्वारा व्यास जी ने तत्कालीन स्वाधीनता-संग्राम को दिशा और प्रेरणा देने का प्रयत्न किया था।

यहाँ ऐतिहासिक वृत्त का अवलम्बन करके देशभक्ति एवं धर्मरक्षा की भावना को अपने पाठकों और श्रोताओं में सम्प्रेषित करने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। वे एक साथ तत्कालीन यवन-शासकों की क्रूरता तथा शिवाजी के शौर्य तथा शाश्वत न्याय-प्रियता का यथार्थ चित्र उकेरने में एक सिद्धहस्त चित्रकार की भाँति दिखाई देते हैं। इसका अंगीरस वीर है, जो अन्य रसों के अंग भाव से भी परिपुष्ट है।

व्यास जी अपने पूर्ववर्ती सुबन्धु, बाण और दण्डी की कृतियों तथा शैलियों से भी प्रभावित हैं। अतः वे परम्परागत गद्य काव्य-विधा का आधार ग्रहण करके उसमें आधुनिक औपन्यासिक

शिल्प के तत्त्वों का समन्वयन करते हुए शिवराजविजय के रूप में परम्परा और आधुनिकता का मणि-काञ्चन योग करने में सफल हुए हैं।

शिवराजविजय की भाषा सुबोध एवं भावानुरूप है। प्रबन्ध में सर्वत्र वाक्यों का विन्यास वहाँ विद्यमान भिन्न-भिन्न वर्णनीय वस्तु के अनुरूप किया गया है। शिवराजविजय में वर्ण्य के अनुसार ही कहीं तो दीर्घ समास युक्त पदावली और कहीं व्यस्त पदबन्ध का प्रयोग दिखाई देता है। यह गद्य-कृति पाञ्चाली रीति में निबद्ध है। व्यास जी शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों दोनों का ही समुचित प्रयोग करते हैं। यथा– **'भामिनी भ्रूभङ्गभूरिभाव प्रभापराभूतवैभवेषु.... चञ्चचन्द्रहास चमत्कारचाकचक्यचिल्लीभूतचक्षुषका..।'** इत्यादि में अनुप्रास-अलङ्कार की छटा द्रष्टव्य है। व्यास जी के गद्यकाव्य में अर्थालङ्कारों की भूमिका भी अत्यन्त रमणीय बन पड़ी है। जैसे उत्प्रेक्षा एवं लुप्तोपमा अलङ्कारों की प्रकृत संसृष्टि को ही देखा जा सकता है– **'ताञ्च चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणालगौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम् ,सक्षोभं रुदतीमवलोक्यास्माभिरपि न पारितं निरोद्धुं नयनबाष्पाणि।'** विरोधाभास व्यास जी का प्रिय अलंकार है। चित्तौड़गढ की स्त्रियों के वर्णन में श्लेषयुक्त विरोधाभास का सुन्दर चित्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त शिवराजविजय में दीपक, श्लेष, उदात्त, परिसंख्या आदि अर्थालंकारों का भी प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। शिवराजविजय का प्रधान रस वीर है किन्तु अङ्ग के रूप में वहाँ अन्य रस भी स्थान-स्थान पर अभिव्यक्ति का विषय बनते हैं।

4.3.6 प्रबन्धमञ्जरी

प्रबन्धमञ्जरी हृषिकेश भट्टाचार्य द्वारा प्रणीत 11(ग्यारह) कालजयी निबन्धों का संकलन है। ये निबन्ध समसामयिक विषयों पर रचित हैं। इनकी भाषा सरल किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली शैली में निबद्ध है। भट्टाचार्य जी की व्यञ्जना शक्ति यहाँ गम्भीर से गम्भीरतम विषय का विमर्श करते हुए विनोद के वातायन खोल देती है। प्रबन्धमञ्जरी के नाम से यह निबन्ध संकलन पद्मसिंह शर्मा एवं हरिदत्त शास्त्री के सम्पादकत्व में 1930 ई. में प्रकाशित हुआ था। इन निबन्धों में उद्भिज्जपरिषद्, महारण्यपर्यवेक्षणम्, उदरदर्शनम्, संस्कृतभाषाया वैशिष्टयम् इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

इनकी शैली वैदर्भी है। भाषा में शक्तिमत्ता अपने नैसर्गिक प्रवाह में उपलब्ध होती है। भाषा में प्रसाद और माधुर्य की अनुपम छटा विद्यमान है। उद्भिज्जपरिषद् और महारण्यपर्यवेक्षण में

सिंह और पीपल आदि के व्याख्यानों में मनुष्यों की पशुओं और तृणादि से तुलना तथा मनुष्यों की स्वार्थपरता, कायरता, हिंसावृत्ति, कामुकता,अस्थिरचित्तता, पाखण्ड और पशुबलि आदि का बहुत रोचक एवं मार्मिक चित्रण किया गया है।

उद्भिज्जपरिषद् में श्रीमान् अश्वत्थदेव वनस्पतियों को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि इस संसार में मनुष्यों से बढ़कर कोई निकृष्ट नहीं है। ये अत्यन्त स्वार्थी, वञ्चक, मायावी एवं हिंसक होते हैं और तृणादि से भी तुच्छ हैं। इसी प्रकार महारण्यपर्यवेक्षण में सिंह सभापति-पद से अपने व्याख्यान में पाश्चात्य सभ्यता पर रोचक चुटकी लेता है और कहता है कि ये सभ्यता के पुजारी स्वार्थान्ध होकर सारे पाप करते हैं। इससे भी अधिक रोचक उदर-ब्रह्म का वर्णन है। यहाँ पेट को ही ब्रह्म बताया गया है। यही सर्वत्र विद्यमान है। पेटरूपी ब्रह्म के लिए ही सारी सृष्टि है। इसका अन्त नहीं है। यही सबका सेव्य है।

हृषीकेश भट्टाचार्य के निबन्ध संस्कृत-साहित्य में नई बयार की तरह हैं। यहाँ सर्वथा समसामयिक विषयों को सर्वथा प्रत्यग्र गद्य शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि उन निबन्धों का सम्प्रेष्य सीधे हृदय में गहरे उतर जाता है। भट्टाचार्य जी के निबन्ध संस्कृत भाषा के सर्व-साधारण में प्रसार हेतु एक आदर्श गद्य-विधा के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। इसी में उनकी बहुत बड़ी सफलता है। प्रमुख गद्यकाव्यों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संस्कृत की गद्यकाव्य विधा जितनी प्राचीन है, उतनी ही समृद्ध भी है। यह वस्तुतः भारतीय सभ्यता में निहित कथा-कथन के वैभव की प्रतिनिधि है।

4.4 चम्पू काव्य की उत्पत्ति और विकास

गद्य एवं पद्य अपने अलग-अलग वैशिष्ट्यों से युक्त हुआ करते हैं। जब इन दोनों ही काव्य शैलियों का एक विशिष्टरूप में एकत्र संगम होता है, तो उन दोनों की विच्छित्तियाँ ही मिल कर एक तीसरी विच्छित्ति के रूप में आस्वादित होने लगती हैं। यह मिश्रण वृत्तगन्धि (सा.द. 6/330) गद्य, जिसमें गद्य के शरीर में ही बीच-बीच में वृत्तों के अंश समन्वित होकर गद्य को ही एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं (अर्थात् उसमें पद्य की अलग से कोई सत्ता नहीं होती), पद्य से सर्वथा भिन्न होता है। इसमें वृत्तों के भाग नहीं अपितु सम्पूर्ण वृत्त ही गद्य के बीच-बीच में आते हैं अर्थात् इसमें पद्य और गद्य दोनों का अस्तित्व अलग-अलग देखा जा

सकता है। अतः यह गद्य का कोई प्रकार विशेष न हो करके गद्यपद्योभय-मिश्र एक काव्य-विशेष ही हुआ करता है। इसमें गद्य का गौरव पद्यों के लयात्मक सौन्दर्य से समवेत होकर एक अलग ही छटा को धारण कर लेता है।

हरिदास भट्टाचार्य ने एक अलग निर्वचन के माध्यम से चम्पू के वैशिष्ट्यों को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। तदनुसार– **'चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मयीकृत्य प्रसादयति इति चम्पूः।'** इनके अनुसार चम्पू में शब्दगत चमत्कार तथा अर्थगत प्रसाद होना चाहिए। चम्पू शब्द चुरादिगण की गत्यर्थक चपि (चम्प्) धातु से औणादिक उन् प्रत्यय करने के अनन्तर ऊङ् आदेश करने से निष्पन्न होता है। वस्तुतः चम्पू काव्य अपनी चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण अलग से पहचाने जाते हैं। गद्य-पद्य-मिश्रित रचना की प्रवृत्ति वैदिक वाङ्मय से ही परिलक्षित होने लगती है। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय, कठ एवं मैत्रायणी तीनों संहिताओं में, अथर्ववेद, ऐतरेयब्राह्मण का हरिश्चन्द्रोपाख्यान, कठ, केन, श्वेताश्वतर, मुण्डक आदि उपनिषदों में भी गद्यपद्योभयात्मक वाङ्मय का प्राचीन रूप देखा जा सकता है।

वैदिक साहित्य के पश्चात् महाभारत, विष्णुपुराण और भागवत पुराण में भी गद्य-पद्य का मिश्रण प्राप्त होता है। इसके पश्चात् बौद्ध जातक-कथाओं में हमें चम्पू-शैली का प्रयोग मिलता है। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं– अवदानशतक, दिव्यावदान और आर्यशूर रचित जातकमाला। पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, वेतालपञ्चविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका आदि नीतिपरक उपदेशप्रद कथाएँ भी गद्य-पद्य की मिश्रित शैली में ही लिखी गई हैं। जहाँ तक शिलालेखों का प्रश्न है तो वहाँ चतुर्थ शताब्दी से लेकर बाद तक के शिलालेखों में गद्यपद्यमयी उक्त काव्य विधा का प्रयोग किया गया है। दण्डी द्वारा प्रणीत काव्यादर्श में पहली बार इसके शास्त्रीय विमर्श का दर्शन होता है– **'गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते।'** (काव्यादर्श 1/31)

इससे यह स्पष्ट होता है कि दण्डी से पूर्व एक स्वतन्त्र विधा के रूप में चम्पू साहित्य अस्तित्व में आ चुका था। आगे चलकर हेमचन्द्र ने चम्पू के अधिक समर्थ लक्षण का अनुशासन किया है – **'गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छवासा चम्पूः।'** (काव्यानुशासन 8/9) रामायणचम्पू के रचयिता भोज (11वीं ई.) ने चम्पूकाव्य में गद्य-पद्य की मिश्रित शैली से मिलने वाले आनन्द की तुलना वाद्य एवं गीत के सम्मिश्रण से उत्पन्न माधुर्य से की है–

'गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्तिहृदया हि वाधकलया कलितेव गीतिः।

तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया।।'

(चम्पूरामायण–श्लोक310)

आचार्य विश्वनाथ ने भी गद्य और पद्यमिश्रित रचना को चम्पू कहा है –

'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।' (साहित्यदर्पण 6/336)

सम्प्रति त्रिविक्रमभट्ट-कृत (915ई.) नलचम्पू ही हमारे सामने प्राचीनतम उपलब्ध चम्पू काव्य है। पुनश्च कवि के अप्रतिम कौशल के चलते वह प्रस्तुत विधा के एक मानक के रूप में स्थापित हो जाता है। अतः अपने आदर्श रूप में इस काव्य विधा का आरम्भ उसी से माना जाता है। इसके अनन्तर ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी तक कतिपय अन्य उल्लेखनीय चम्पू कृतियाँ हमारे सामने आती हैं। यशस्तिलकचम्पू (959 ई.), रामायणचम्पू (1018 ई.), भोजप्रबन्ध (एकादश शताब्दी), उदयसुन्दरी कथा (1060 ई.), पुरूदेव चम्पू (13वीं शताब्दी) तथा अनन्तभट्ट कृत भारतचम्पू एवं भागवतचम्पू (15 वीं शताब्दी) इत्यादि। पुनः पन्द्रहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य का काल चम्पू–काव्यों के प्रणयन की दृष्टि से अत्यन्त उर्वर रहा है। इसी समय सर्वाधिक चम्पू काव्यों की रचना हुई है। वैसे चम्पू काव्यों का लेखन वर्तमान युग में भी प्रवर्तमान है।

सन् 1965 ईस्वी में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवम् ऐतिहासिक अध्ययन' में डा. छविनाथ त्रिपाठी ने उपलब्ध प्रकाशित एवम् अप्रकाशित 245 चम्पू काव्यों का उल्लेख किया है परन्तु चम्पू काव्यों की रचना इसके अनन्तर भी होती रही है। अतः यह संख्या आज और भी अधिक हो गई है। चम्पू काव्यों को उनके कथा-स्रोत के आधार पर अधोलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है–1. रामायण-मूलक चम्पू काव्य, 2. महाभारत-मूलक चम्पू काव्य, 3. पुराण-मूलक चम्पू काव्य, 4. जैन-आख्यान-मूलक चम्पू काव्य, 5. महापुरुषचरित-मूलक चम्पू काव्य, 6. यात्रा-मूलक चम्पू काव्य, 7. दर्शन-मूलक चम्पू काव्य, 8. कल्पना-मूलक चम्पू काव्य, 9. अन्य-मूलक चम्पू काव्य। इस प्रकार संस्कृत में चम्पू–काव्यों की परम्परा न केवल काल की दृष्टि से अत्यन्त विस्तीर्ण है अपितु अपने कथा स्रोतों की दृष्टि से भी एक अत्यन्त विशाल एवं वैविध्यमय फलक का अवलम्बन करती है। इसमें जहाँ

कविता का उत्कृष्ट वैभव दिखाई देता है, वहीं यह परम्परा चम्पू काव्यों की संख्या की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध है।

4.5 प्रमुख चम्पू काव्य

इकाई के इस अंश में आप प्रमुख चम्पू काव्यों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे–

4.5.1 नलचम्पू

नलचम्पू काव्य के रचयिता त्रिविक्रमभट्ट हैं। त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू के प्रारम्भ में अपने वंश का विवरण दिया है। इससे अवगत होता है कि वे शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण देवादित्य के पुत्र थे। इनके आश्रयदाता राष्ट्रकूटवंशी राजा इन्द्रराज तृतीय थे, जिनका राज्याभिषेक 915 ई. में हुआ था। अतएव त्रिविक्रमभट्ट का समय दसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। त्रिविक्रमभट्ट की दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं– नलचम्पू और मदालसाचम्पू।

नलचम्पू का उपजीव्य महाभारत के वनपर्व में स्थित नलोपाख्यान है। नलचम्पू सात उच्छ्वासों में विभक्त है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है क्योंकि देवताओं का संवाद लेकर नल दमयन्ती के प्रासाद में पहुँचता है और दोनों परस्पर प्रेमासक्त हो जाते हैं। यहीं कथा खण्डित हो जाती है। विवाह पर्यन्त उसका विन्यास दिखाई नहीं पड़ता। इस काव्य में सभंगश्लेष के सुन्दर प्रयोग हैं, जो सुबन्धु की वासवदत्ता की अपेक्षा अधिक सहज तथा मनोहर हैं। मंगलाचरण के चतुर्थ पद्य में कवि ने वाणी की तुलना गृहस्थ स्त्रियों से करते हुए श्लेष का सुमधुर प्रयोग किया है –

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः।
भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ।।

कवि ने कहा है कि सभंगश्लेष के प्रयोग से वाणी कुछ कठिन हो जाती है किन्तु इससे उद्विग्न नहीं होना चाहिए। सभंग-पदश्लेष के माध्यम से कुकवियों की बालकों के साथ की जाने वाली उपमा सहृदयों के लिए अत्यन्त चित्तापहारिणी है–

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव।। (नलचम्पू 1/6)

रम्या रामायणी कथा की त्रिविक्रमभट्ट कृत प्रशस्ति श्लेषप्रतिभा-मूलक विरोधालंकार से कितनी रम्य बन पड़ी है, यह द्रष्टव्य है–

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।

नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।। (नलचम्पू1/11)

दूषण तथा खर नामक राक्षसों से युक्त होती हुई भी दोषरहित एवं सुकोमल रमणीय रामायणी कथा का जिसने प्रणयन किया, उस (वाल्मीकि) को नमस्कार है। प्रथम उच्छ्वास के आर्यावर्त वर्णन में चम्पूकार श्लेष युक्त परिसंख्या से सहृदयों के लिए विशेष आह्लादक शब्दार्थ-सामग्री का प्रकटन करते हैं– **'यत्र च लतासम्बन्धः कलिकोपक्रमश्च पादपेषु दृश्यते, न पुरुषेषु। यत्र चमरकवार्ता परमहिमोपघातश्च तुहिनाचलस्थीषु श्रूयते, न प्रजासु......।'** (प्रथम उच्छ्वास)

वहाँ वृक्षों पर लताओं का संयोग तथा कलियों का आविर्भाव पाया जाता है, मनुष्यों में चपलता का उपक्रम तथा कलि का प्रादुर्भाव नहीं मिलता है। हिमालय के स्थलों में चमरक नामक हिरण्यों की वार्ता तथा प्रचुर रूप में हिमपात से उत्पन्न उच्छृंखल कर्णगोचर प्रजाजनों में अकाल मृत्यु का समाचार तथा दूसरे की महिमा का हनन नहीं होता है। पञ्चम उच्छ्वास में उपमा अलंकार का भी समुचित प्रयोग मिलता है। नल को दमयन्ती द्वारा दी गई मुक्तावली देता हुआ हंस कहता है कि दमयन्ती की भुजा तुल्य यह हार लता आपका कण्ठालिङ्गन करे–

उन्मदिनीमदनकार्मुक-मण्डलज्या सैभाग्यभाग्यपर वैभववैजयन्ती।

मुक्तावली कुलधनं नरनाथ सैषा कुण्ठग्रहं तव करोतु भुजेव तस्याः।। (नल. 5/10)

इसी प्रकार त्रिविक्रमभट्ट का यह काव्य अनुप्रास तथा यमक से भी सुमण्डित है। शृंगार रस के साथ ही वीर, रौद्र, करुण, भयानक तथा हास्य रसों की भी सुन्दर योजना प्रकृत काव्य में देखने को मिलता है। इस प्रकार नलचम्पूकार ने सरस सरल श्लिष्ट कोमलकान्त पदावली का प्रयोग करते हुए इस मिश्र काव्य का प्रणयन किया है।

4.5.2 जीवन्धरचम्पू

जीवन्धरचम्पू काव्य के रचयिता जैन कवि हरिचन्द्र है। इनके पिता का नाम आर्द्रदेव एवं माता का नाम रथ्या था। ये कायस्थों के मोमक वंश में उत्पन्न हुए थे और दिगम्बर जैनमतानुसारी कवि थे। कीथ की दृष्टि में ये धर्मशर्माभ्युदय नामक महाकाव्य कृति के भी कर्ता हैं। विद्वानों के अनुसार हरिचन्द्र का काल दसवीं शताब्दी के आस-पास होना चाहिए।

जीवन्धरचम्पू में राजा सत्यन्धर और विजया के पुत्र राजकुमार जीवन्धर के चरित को ही चम्पू विधा में प्रस्तुत किया गया है। इस चम्पू के वृत्त का उपजीव्य गुणभद्र विरचित उत्तरपुराण के पचहत्तरवें पर्व में वर्णित जीवन्धर स्वामी की मूल कथा है। इस चम्पू की कविता पर माघ का पुष्कल प्रभाव है। जैन धर्म के सिद्धान्तों को इसमें सरलता से निरूपित किया गया है। इस चम्पू काव्य में ग्यारह लम्भ हैं– 1. सरस्वती-लम्भ, 2. गोविन्द-लम्भ, 3. गन्धर्वदत्त-लम्भ, 4. गुणमाला-लम्भ, 5.पद्मा-लम्भ, 6. क्षेमश्री-लम्भ, 7. कनकमाला-लम्भ, 8. विमला-लम्भ, 9. सुरमञ्जरी-लम्भ, 10. लक्ष्मणालम्भ 11.मुक्ति-लम्भ। इस चम्पू में स्थान-स्थान पर जैनधर्मोपदेश भी है। अतः धार्मिक भावना को चमत्कार पूर्ण कवित्वमय शैली में वर्णन करने वाला यह चम्पू काव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

4.5.3 यशस्तिलकचम्पू

यशस्तिलकचम्पू काव्य के रचयिता सोमदेवसूरि हैं। ये जैन सम्प्रदाय के चतुर्विध संघों मे से देवसंघ के आचार्य थे। इन्होनें नीतिवाक्यामृत नामक नीतिशास्त्रीय ग्रन्थ भी लिखा है। सोमदेव नेमिदेव के शिष्य और यशोदेव के प्रशिष्य थे। चालुक्यराज अरिकेसरी द्वितीय के बड़े पुत्र इनके आश्रय दाता थे। ये राष्ट्रकूट के राजा कृष्ण तृतीय (929-968 ई.) के समकालिक थे। सोमदेव ने यशस्तिलकचम्पू में लिखा है कि चैत्र शुक्ल त्रयोदशी शक संवत् 881(959 ई.) चालुक्यवंशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र वद्दिग (वद्यगराज) की राजधानी गंगाधर में इन्होंने यह काव्य लिखा है–

'शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेष्वष्टष्वेकाशत्यधिकेषु गतेषु अङ्कतः सिद्धार्थसंवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्यां........श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्वद्यगराजप्रवर्धमानवसुधरायां गङ्गाधरायां विनिर्मापितमिदं काव्यमिति।'

(यशस्तिलकचम्पू–उत्त.– पृ. 418)

इसकी कथा का मूल स्रोत गुणभद्र रचित उत्तरपुराण में वर्णित अवन्तिराज यशोधर की कथा है। इस चम्पू काव्य में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष भाग गद्य है। इस चम्पू काव्य में कथा विन्यास आठ आश्वासों में किया गया है। प्रथम आश्वास में कथावतार या कथा की पृष्ठभूमि है और अन्त के तीन आश्वासों में उपासकाध्ययन अर्थात् जैन गृहस्थ के आचार का विस्तृत विवेचन है। यशोधर की वास्तविक कथा बीच के चार आश्वासों में निबद्ध है जिसके वक्ता के रूप में स्वयं यशोधर चित्रित हैं।

यौधेय नामक जनपद की राजधानी के मारिदत्त को वीरभैरव नामक आचार्य के द्वारा यह बताया जाता है कि चण्डमारी देवी को अनेक पशुयुगलों के साथ सुन्दर नर-युगल की बलि देने से विद्याधर–लोक की प्राप्ति होती है। लालायित राजा ने बलि हेतु अनेक पशु-युगलों की व्यवस्था कर ली। इसी बीच उसके अनुजीवी चाण्डाल मध्याह्न-भिक्षा के लिए निकले हुए तपस्वी कुमार अभयरुचि और कुमारी अभयमति, जो संयोगवश उन दिनों अपने गुरु जैनाचार्य सुदत्त के साथ उज्जयिनी के बाहर डेरा डाले हुए थे, को छल से देवी मन्दिर में राजा के पास ले आते हैं। राजा के द्वारा परिचय पूछने पर मुनिकुमार कहता है कि उज्जयिनी-नरेश यशोर्ध अपने पुत्र यशोधर का राज्याभिषेक तथा अमृतमति के साथ उसका विवाह करके स्वयं संन्यास ग्रहण कर लेते हैं।

यशोधर अमृतमति के साथ सुखपूर्वक रहते हुए राज्य संचालन करने लगता है। एक रात्रि राजा को शय्या पर सोया समझ कर रानी उठकर दासी का वेश धारण करके महल से बाहर निकल जाती है। राजा रहस्य जानने के लिए रानी के पीछे-पीछे जाता है और देखता है कि दासी वेश धारिणी रानी एक महावत के साथ नाना प्रकार से रति विलास करती है। राजा अपने क्रोधावेग को दबाकर वापस लौट आता है और शय्या पर पहले की भाँति सो जाता है। रानी भी वहाँ से लौटकर शय्या पर सो जाती है। अगले दिन माता चन्द्रमति राजा से मुख मालिन्य का कारण पूछती है। राजा उन्हें स्वप्न में अपने पुत्र यशोमति को राज्य देकर स्वयं संन्यास लेने का वृत्तान्त देखने की बात बताता है। पुनः स्वकुल परम्परानुसार अपने संन्यास पर जाने के निर्णय से भी अवगत कराता है। माँ चण्डमारी देवी के सम्मुख स्वप्न-शान्ति हेतु यशोधर को पशुबलि देने को कहती है। यशोधर इस पशु-हिंसा के लिए कथमपि तैयार नहीं होता है। फिर भी माँ उससे आटे के बने मुर्गे की बलि दिलवाती है।

अमृतमति वस्तुतः प्रसन्न होती है, पर ऊपर से स्वयं को भी उससे अपने को भी वन ले चलने की प्रार्थना का पाखण्ड करती है। राजा और मर्माहत हो जाता है। अमृतमति सोचती है कि कहीं राजा का वैराग्य क्षणिक न हो, इसलिए प्रसाद में विष मिला कर राजा यशोधर और माता चन्द्रमति का वध कर डालती है।

वे दोनों माता और पुत्र आटे के मुर्गे की बलि देने से उत्पन्न पातक के कारण तीन जन्मों तक विभिन्न तिर्यग-योनियों में भटक कर अन्ततः यशोमति के पुत्र अभयरुचि तथा पुत्री अभयमति के रूप में जन्म लेते हैं। एक बार राजा यशोमति सपरिवार आचार्य सुदत्त के दर्शन करने गया और वहाँ अपने पूर्वजों की परलोक यात्रा के सम्बन्ध में आचार्य से पूछा। आचार्य ने बताया कि तुम्हारे पूर्वज यशोधर तपःपुण्य से स्वर्ग में हैं और माँ अमृतमति हत्या के पाप से नरक में दुःख भोग रही है। आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण तुम्हारे पिता यशोधर और पितामही चन्द्रमति तीन तिर्यग् योनियों में चक्कर काट कर सम्प्रति तुम्हारे पुत्र और पुत्री के रूप में जन्मे हैं। इस कथा को सुनकर कुमार अभयरुचि तथा कुमारी अभयमति बाल्यावस्था में ही दीक्षा ले लेते हैं। वहीं हम आज आपके कर्मचारियों के द्वारा पकड़ कर यहाँ ले आए गए हैं। यहाँ तक पञ्चम आश्वास की कथा सम्पन्न हो जाती है। इसके आगे के तीन आश्वासों में आचार्य सुदत्त के मुख से कुल छियालीस कल्पों में श्रावकाचार का उपदेश वर्णित है।

यशस्तिलक मिश्र काव्य विधा की एक विशिष्ट कृति है। इसमें उत्कृष्ट काव्य के समस्त गुण विद्यमान हैं। गद्य और पद्य के सम्मिश्रण की विचित्रता, रूपकादि के संगुम्फ से अलङ्कृत सरसशैली, आनन्दोत्पादक कथाविन्यास, राजनीति, विभिन्न दर्शन सिद्धान्तों का पाण्डित्यपूर्ण सन्निवेश, गजाश्व विद्याएँ, शस्त्रविद्या, आयुःशास्त्र तथा भाषा की उत्कट प्रौढि आदि इस काव्य को संस्कृत काव्य परम्परा में एक अलग ही स्थान का भागी बना देते हैं। प्रकृत कृति में सोमदेव का विविधविद्या-वैशारद्य चतुर्दिक् प्रसृत है। विशेषरूप से उनकी शब्द सम्पदा रचना को अत्यधिक गौरव प्रदान करती है। नवीन शब्दों, जो कोशों तथा अन्य काव्यों में दृष्टिगत नहीं होते, के संगुम्फ के प्रति कवि का आग्रह काव्य की भाषा को अति क्लिष्ट बना देता है। स्थिति यह है कि प्रस्तुत काव्य के इस प्रकार के शब्दों का निघण्टु तथा अर्थ बताने वाली एक स्वतन्त्र कृति यशस्तिलकपञ्जिका की ही रचना श्रीदेव द्वारा की हुई प्राप्त होती है। वस्तुतः सोम की इस कृति में जिस कथा कौशल, भाषा-प्रागल्भ्य तथा काव्य चातुरी के

नयनाभिराम दर्शन होते हैं उसका आदर्श बाण कृत कादम्बरी ही है। पर जहाँ तक चम्पू-नाम्नी काव्य विधा का प्रश्न है, उसमें सोमदेव प्रायः अतुलनीय हैं।

4.5.4 रामायणचम्पू

रामायणचम्पू अथवा चम्पूरामायण के प्रणेता धारानरेश राजा भोज (11 वीं शताब्दी) हैं। ये सरस्वतीकण्ठाभरण एवं शृंगारप्रकाश आदि अनेक अन्य कृतियों के भी कर्ता हैं। उनका उपर्युक्त चम्पूकाव्य वाल्मीकीय रामायण के प्रसिद्ध कथानक पर अवलम्बित है तथा उसी की ही भाँति यह चम्पूकाव्य भी काण्डों में विभक्त है। अन्तर बस इतना है कि यहाँ काण्डों की संख्या छह है। रामायणचम्पू के अन्त में अंकित श्लोक से यह सूचना मिलती है कि उसके बालकाण्ड से लेकर सुन्दरकाण्ड तक के प्रारम्भिक पाँच काण्ड स्वयं भोज की रचना हैं परन्तु अन्तिम युद्धकाण्ड लक्ष्मणसूरि द्वारा प्रणीत है –

साहित्यादिकलावता सनगरग्रामावतंसायित–
श्रीगङ्गाधरधीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिकासूनुना।
प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपि जीयाच्चिरम्।।

(चम्पूरामायण युद्धकाण्ड–110)

सम्प्रति प्रस्तुत चम्पूकाव्य में कवि द्वारा अवलम्बित शैली पर विचार किया जा रहा है। यथा विदित ही है कि चम्पूकाव्य गद्य काव्य एवं पद्य काव्य की ही एक मिश्र विधा है। अतः भोज ने निश्चित ही अपने काव्य के गद्य भाग का प्रणयन करते समय बाणभट्ट की गद्य शैली को अपने सामने आदर्श रूप में रखा। यही कारण है कि उनके प्रकृतिवर्णन–सन्दर्भ, चाहे वे हेमन्त एवं वर्षा आदि ऋतुओं के वर्णन-प्रसङ्ग हों अथवा सन्ध्या तथा चन्द्रोदयादि के, दीर्घसमासवती, अलङ्कारबहुला, गाढबन्धमयी बाण-शैली का वरण करते हैं। इसका आशय यह नहीं कि वहाँ प्रसन्नपद-सन्दर्भ हैं ही नहीं। कथा-सूत्र के पुरस्करण वाले कतिपय स्थलों पर उनकी पदावली इसी प्रकार की है। भोज जब अपने चम्पू काव्य के पद्य भागों का प्रणयन करते हैं तो वे अनेकशः कालिदास से प्रभावित परिलक्षित होते हैं। ऐसे कतिपय स्थलों पर उनके यहाँ

अनेकत्र वैदर्भी रीति की कमनीय केली परिलक्षित होती है। वैसे क्योंकि भोज-पूर्ववर्ती चम्पूकार प्रायः शब्द-चमत्कार-प्रिय रहे थे अतः भोज भी उस परम्परा का उल्लंघन नहीं करते और गद्य में ही नहीं अपितु पद्य में भी अनुप्रास, यमक सदृश शब्दालंकारों की छटा बिखेरते हैं। वस्तुतः उनकी कविता अलङ्कार-सम्पत्ति से पर्याप्त सम्पन्न है। अलङ्कारों की योजना में उनका विशेष संरम्भ दृष्टिगोचर होता है। वास्तव में यह प्रवृत्ति भी उन्हें पूर्ववर्ती चम्पूकारों से ही प्राप्त है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि रामायणचम्पू भी अपने चम्पू-काव्यों की परम्परा द्वारा प्रदत्त आधार-भूमि पर ही प्रतिष्ठित है।

4.6 सारांश

कवियों के निकषभूत गद्यकाव्य की यों तो अनेक विधाओं का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु कथा एवम् आख्यायिका उसके विश्रुततम रूप हैं। इसी प्रकार चम्पू नाम की गद्यपद्योभय-मिश्रा एक अन्य श्रव्यकाव्य-विधा भी सहृदयों की चित्तावर्जन-भूमि रही है। यहाँ उक्त दोनों ही विधाओं की उत्पत्ति, विकास तथा प्रमुख रचनाओं पर प्रकाश डाला गया है। गद्य का सर्वप्राचीन रूप यजुर्वेद संहिता में उपलब्ध होता है। उसके बाद पुराण में वह अनेकत्र साहित्यिक गद्य के गुण धर्म का वरण करने लगता। आगे चलकर यह कथा, आख्यायिका आदि अनेक साहित्यिक विधाओं के रूप में प्रतिफलित हो जाता है। शूद्रक-कृत वासवदत्ता, दण्डी-कृत दशकुमारचरित तथा बाणकृत हर्षचरित और कादम्बरी आदि साहित्यिक संस्कृत-गद्य के शाश्वत प्रकाश-स्तम्भ रहे हैं। आगे चलकर धनपालकृत तिलकमञ्जरी से लेकर अद्यावधि प्रणीत रचनाओं तक गद्य की यह विकास यात्रा अक्षुण्ण रही है। गद्य-पद्य-मिश्रित रचना की प्रवृत्ति वैदिक वाङ्मय से ही परिलक्षित होने लगती है। इसके अनन्तर महाभारत, कतिपय पुराणों तथा बौद्ध जातकों आदि से होती हुई यह प्रवृत्ति लौकिक साहित्य में चम्पू नामक चमत्कारिणी काव्य-विधा का स्वरूप धारण कर लेती है। सम्प्रति त्रिविक्रमभट्ट-कृत (915ई.) नलचम्पू ही हमारे सामने प्राचीनतम उपलब्ध चम्पू काव्य है तथा अपने आदर्श रूप में इस काव्यविधा का आरम्भ उसी से माना जाता है। इसके अनन्तर ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी तक प्रणीत कतिपय अन्य उल्लेखनीय चम्पू कृतियाँ हमारे सामने आती हैं– यशस्तिलकचम्पू (959 ई.), रामायणचम्पू (1018ई.), भोजप्रबन्ध (एकादश शताब्दी), उदयसुन्दरी कथा (1060 ई.), पुरूदेव चम्पू (13वीं शताब्दी) तथा अनन्तभट्ट कृत भारतचम्पू एवं भागवतचम्पू (15 वीं शताब्दी) इत्यादि।इस

प्रकार इस इकाई में आपने गद्य एवं चम्पू काव्य की उम्पत्ति के विषय में अध्ययन किया तथा प्रमुख गद्यकाव्यों एवं चम्पू काव्यों का परिचय प्राप्त किया।

4.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.कादम्बरी– व्याख्यकार पण्डित श्रीकृष्णमोहन शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी,1961

2.चम्पू-रामायण का साहित्यिक परिशीलन – अरुणा कुमारी श्रीवास्तव, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी,1968

3. चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवम् ऐतिहासिक अध्ययन – डा.छविनाथ त्रिपाठी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,1965

4.जीवनधरचम्पूः – सं. पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1944

5. दशकुमारचरितम् – मोरेश्वर रामचन्द्र काले, शारदा क्रीडन मुद्रा यंत्रालय, मुम्बई, शकाब्द 1822

6. नलचम्पूः – व्याख्याकार पं. श्रीपरमेश्वरदीन पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1984

7. संस्कृत साहित्य का इतिहास – उमाशंकर शंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी

4.8 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कृत गद्य के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

2. चम्पूकाव्य के उद्‌भव एवं उसकी विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

3. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

   (क) दशकुमारचरित (ख)वासवदत्ता (ग) हर्षचरित (घ) कादम्बरी (ङ) शिवराजविजय (च) प्रबन्धमञ्जरी

4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

(क) नलचम्पू (ख) जीवन्धरचम्पू (ग) यशस्तिलकचम्पू (घ) रामायणचम्पू

इकाई 5 दृश्य काव्य – रूपक

इकाई की रूपरेखा

5.8 कुछ उपयोगी प्रस्तकें

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- दृश्य काव्य की अवधारणा से परिचित होंगे।
- दृश्य काव्य.रूपक की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
- रूपक के उद्भव और उसके विकास क्रम का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- दशविध रूपकों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रमुख संस्कृत रूपकों यथा स्वप्नवासवदत्तम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रतिमानाटकम् आदि की कथावस्तु का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- दृश्य काव्य की महत्ता से परिचित होंगे।

5.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! 'संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य' पाठ्यक्रम की यह पाँचवीं इकाई है। इस इकाई से पूर्व की इकाइयों में आपने महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथासाहित्य, गद्य तथा चम्पू काव्य के उद्भव और विकास के क्रम का अध्ययन किया। इस इकाई में आप दृश्य काव्य. रूपक का अध्ययन करेंगे।

काव्य मानवीय सौन्दर्य भावना की अभिव्यक्ति है। वस्तु जगत् उसका प्रधान उपजीव्य है। काव्य निर्माण में कल्पना का योग अनिवार्य सा है, किन्तु मानव की सूक्ष्म से सूक्ष्म कल्पना भी वस्तु जगत् से सर्वथा असम्पृक्त नहीं हो सकती। वस्तुतः कल्पना की प्रधान उपयोगिता सौन्दर्यानुभति के उत्कर्ष में है और काव्य का मौलिक आधार वस्तु.जगत् है।

श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य दोनों की रचना मूलतः शब्दार्थों से होती है परन्तु नाट्यकला की प्रक्रिया में ढलते ही इनके स्वरूपों में भिन्नता आने लगती है। काव्यधारा की दो सरणियों में विभक्त दृश्य एवं श्रव्य काव्य में रस का आस्वादन भी पृथक्.पृथक् तरीके से किया जाता है। दृश्य काव्य में रस का आस्वादन मुख्य रूप से चक्षुरिन्द्रिय द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत श्रव्य काव्य में श्रवण तथा अध्ययन दोनों से आनन्द की उपलब्धि होती है। दृश्य काव्य अभिनेय है। यह रंगमंच की वस्तु है। यह अभिनय के द्वारा दर्शकों में रसोद्बोध उत्पन्न करता है। सामाजिक में रस की उत्पत्ति करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसकी मौखिक परम्परा तो बहुत पहले से ही उपलब्ध होती है किन्तु लिखित स्वरूप हमें भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। इसकी परम्परा का उल्लेख हमें भारतीय इतिहास के अत्यन्त प्राचीन युग की ओर ले जाता है। इस इकाई में आप नाट्यशास्त्र के उद्भव और विकास के क्रम का अध्ययन करेंगे। नाटक के बीज का सर्वप्रथम दर्शन हमें ऋग्वेद के संवाद सूक्तों और सोमपान के अवसर पर किए जाने वाले अभिनय से मिलता है। उसके पश्चात् अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने नाटक के उद्भव और विकास पर अपने.अपने मत प्रस्तुत किए हैं जिसके आधार पर नाट्यशास्त्र की परम्परा को समझा जा सकता है। रूपक के दशविध भेद हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन। इस इकाई में आप रूपक के इन दस भेदों का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे। अध्ययन के इस क्रम में आप स्वप्नवासवदत्तम्, मृच्छकटिकम्, वेणीसंहारम् आदि नाटकों के इतिवृत्त का भी अध्ययन करेंगे।

5.2 दृश्य काव्य – रूपक का अभिप्राय

भारतीय विद्वानों ने 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कहकर एवं पाश्चात्य नाट्यशास्त्रियों ने **The drama is at once the most peculiar the most elusive and the most enthralling**

of all types of literature. Allardyce Nicoll, The theory of drama, P.No.9 आदि शब्दों से नाट्य की प्रशंसा कर साहित्य में इस नाट्यविधा को विशेष महत्त्व दिया है। इसी नाट्य का लक्षण आचार्य धनंजय ने '**अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्**' अर्थात् अवस्था का अनुकरण नाट्य है के रूप में किया है। यहाँ अवस्था से तात्पर्य धीरोदात्तादि चार अवस्थाओं से हैं। यह रंगमंच की वस्तु है। अभिनय के द्वारा दर्शकों में रसोद्बोध उत्पन्न करना ही इसका उद्देश्य है। रंगमंच की साज.सज्जा एवं अभिनेताओं के कायिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य अभिनय को देखकर सामाजिक को आनन्द की अनुभूति होती है। अवस्थानुकृति से वेश.भूषा इत्यादि के द्वारा पात्रों की तादात्म्यापत्ति हो यथा नट राम की प्रत्येक प्रवृति की ऐसी अनुकृति करें कि दर्शक उसे राम ही समझें। अभिनय के समय अनुकार्य राम और सफल अनुकर्त्ता नट में भेद नहीं रह जाता उसमें परस्पर अभेद की प्रतीति होने लगती है। जब अभिनेता अपनी मानसिक स्थिति से सामाजिक को अनुभूति से तदाकार कराना चाहता है तो अपनी आन्तरिक अनुभूति को प्रभावशाली बनाने के लिए अभिनय का ही आश्रय लेता है। अभिनय का अर्थ स्पष्ट करते हुए भरत ने लिखा है कि यह अपने प्रयोग के द्वारा नाटक मुख्यार्थ की निश्चिति में समर्थ होता है। वस्तुतः नाट्यशास्त्र में अभिनय शब्द बहुत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है– इसमें नाटक के प्रायः सभी तत्त्वों का समावेश अनायास ही हो जाता है। वेश.भूषा, विन्यास, रंगमंच की सजावट, नाट्यगान और रस के सभी आश्रय एवं उपादान इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

यहाँ अभिनवगुप्त 'अभिनवभारती' में अनुकीर्तन की व्यवस्था प्रस्तुत करते हैं–''**तदिदमनुकीर्तनव्यवसायविशेषो नाट्यापरपयार्यः नानुकार इति भ्रमितव्यम्।**'' इनके अनुसार नाट्य जो कि अनुव्यवसाय.विशेष रूप अनुकीर्तन व्यपार है इसे अनुकरण समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। अभिनय तो अनुकारण पर आश्रित होता है, पर जहाँ रचना शामिल हो जाती है वहाँ मात्र लोककृत का अनुकरण नहीं रह जाता क्योंकि अनुकरण नकल का ही

पर्याप्य है। नकल अभिनय का एक प्रकार भले ही है किन्तु वह निम्न कोटि का है। इसके द्वारा उपहास के माध्यम से दर्शकों में हास्य की कुछ सृष्टि भले ही हो किन्तु उससे लक्षित व्यक्ति के मन में द्वेषादि उत्पन्न हो जाते हैं जो नाट्य का उद्देश्य कथमपि नहीं हो सकता है।

दृश्यकाव्य का एक अपर पर्याय है– रूप। रंगमंच पर अभिनीत किए गए इन नाटकों को दर्शक गण देखते हैं, अतः ये रूप भी कहलाते हैं– **'रूपं दृश्यतयोच्यते'**। (दशरूपक 1/7) जैसे नील.पीतादि रंग दिखाई देने के कारण रूप कहे जाते हैं उसी प्रकार नाट्य भी दिखाई देने के कारण रूप कहा जाता है। नाट्य को नटों द्वारा अभिनय किया जाता है। दर्शक उस नाट्य को अभिनीत होते हुए आँखों से देखते है। अतः वह नाट्य (दृश्य) है। आँखों से देखे जाने के विषय को रूप कहा जाता है उसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय से ग्राह्य होने से नाट्य 'रूप' कहलाता है। नाटक में स्थित वाक्यार्थ, पदार्थ का अभिनय रूप नट का कर्म ही नाट्य है। काव्य में वर्णित राम आदि की अवस्था का नट में आरोप किए जाने से वह नाट्य 'रूपक' कहलाता है– **'रूपकं तत्समारोपात्'** (दशरूपक– 1/7) जैसे रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्रमा का आरोप करने के कारण 'मुखं चन्द्रः' (मुखीरूपी चन्द्रमा) कहा जाता है, वैसे ही नाट्य में अनुकर्ता नट पर काव्य में वर्णित रामादि (अनुकार्य) पात्रों की अवस्था का आरोप होने के कारण नाट्य भी रूपक कहलाता है।

5.3 दृश्य काव्यः रूपक का उद्भव और विकास

जब हम संस्कृत रूपकों के उद्भव पर विचार करते हैं तो विश्व साहित्य के प्रथम ज्ञानसंग्रह ऋग्वेद में हमें इसके सम्बन्ध में सामग्री प्राप्त होती है जिससे वैदिक युग में नाट्यकला के अस्तित्व का पता चलता है। ऋग्वेदोक्त संवाद सूक्तों तथा सोमपान के अवसर पर किए जाने वाले लघु.अभिनय आदि को नाट्य कला के बीज के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति के विषय में भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि जब सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे उन्हें मनोरंजन की कोई ऐसी वस्तु प्रदान करें जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों हों और चारों वर्णों के व्यक्तियों द्वारा समान रूप से स्वीकार्य हों जब देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को ग्रहण कर पाँचवें पद के रूप में नाट्यवेद की सृष्टि की–

''एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च
यजुर्वेदादभिनयान् रसानथर्वणादपि।।''

नाट्यशास्त्र 1/17.18

यद्यपि संस्कृत रूपकों का उद्भव और विकास कब और कैसे हुआ यह एक विवादग्रस्त प्रश्न रहा है, तथापि इस विषय में अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने अपने.अपने मत प्रस्तुत किये है। जिनमें साम्य तथा वैषम्य दोनों ही दिखाई देते हैं।

डॉ. रिजवे नाटकों की उत्पत्ति का मूल कारण वीरपूजा को मानते हैं। इनका कथन है कि नाटकों की उत्पत्ति मृत.पुरुषों की स्मृति में उनके सम्मान तथा उनके प्रति आदर और श्रद्धाभाव को प्रकट करने से सम्बन्धित है। आज भी विभिन्न देवताओं के मन्दिरों, महान् पुरुषों एवं राष्ट्रीय नेताओं के स्मारकों एवं इनके चरित पर आधारित काव्यों एवं नाटकों को इस मत की पुष्टि में प्रमाण माना जा सकता है। रामलीला तथा रासलीला को इसके उदाहरण के रूप में स्वीकार किया गया है।

जर्मन विद्वान् डॉ पिशेल का मत है कि नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलिका नृत्य (कठपुतली) से मानी जानी चाहिए। इनका कथन है कि प्राचीन समय में कठपुतलियों का नाच प्रचलित था जिसका विकसित रूप ही नाटक है। इस मत की पुष्टि के लिए संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त 'सूत्रधार' तथा 'स्थापक' शब्दों के प्रयोग को उद्धृत किया गया है।

प्रो. हिलब्रान्ड और स्टेन कोनो लोकप्रिय स्वाँगों से नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं। इनका कथन है कि रामायण और महाभारत की कथाओं और स्वाँगों के मिश्रित रूप से ही नाटकों का जन्म हुआ।

प्रो. ल्यूडर्स और स्टेन कोनो का मत है कि नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों में प्रदर्शित किए जाने वाले छायाचित्रों से हुई। इस मत को भारत के सम्बन्ध में अधिकांश विद्वान् अप्रासंगिक ही मानते हैं क्योंकि संस्कृत साहित्य में सुभट कवि का एकमात्र छाया नाटक 'दूताङ्गद' ही उपलब्ध हो पाया है।

प्रो. मैक्समूलर, प्रो. सिल्वाँ लेवी, प्रो. श्रोएदर, डॉ. हर्टल आदि अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् ऋग्वेदोक्त संवाद सूक्तों से नाटकों की उत्पत्ति मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का यह मत भारतीय मत से बहुत कुछ साम्य रखता है। इनका कथन है कि ऋग्वेद में इन्द्र.मरुत् संवाद, यम.यमी संवाद, पुरुरवा.उर्वशी संवाद आदि अनेक ऐसे संवाद सूक्त हैं जो अभिनयात्मक कहे जा सकते है। संभवतः महाकवि कालिदास ने भी पुरुरवा.उर्वशी संवाद के आधार पर ही 'विक्रमोर्वशीयम्' की रचना की हो। भारत एवं पश्चिम के अधिकांश विद्वान् नाट्य की उत्पत्ति वेदों से मानते हैं।

कतिपय पाश्चात्य विद्वान् संस्कृत की 'यवनिका' का सम्बन्ध यवन (यूनान) से जोड़कार भारतीय नाटकों की उत्पत्ति यूनान से मानते हैं परन्तु यह मत भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि 'यवनिका' मूल शब्द न होकर 'जवनिका' है। 'जव' का अर्थ है त्वरा या तेजी। जो तेजी से गिराया

जाय, अर्थात् जवनिका उस बड़े परदे को कहते हैं, जो नाटक के किसी एक अंक या दृश्य की समाप्ति पर गिरा दिया जाता है। किसी भी संस्कृत नाटक में परदे के अर्थ में यवनिका शब्द प्रयुक्त नहीं देखा जाता है। अतः यवनिका अथवा यवन शब्द को यूनान से जोड़ना सर्वथा निर्मूल है। यूनानी नाटक प्रायः खुले रंगमंचों पर अभिनीत होते हैं, (रंगमंचों) का विस्तृत विवेचन किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि भारतीय नाट्यकला किसी की नकल न होकर स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई है।

भारत एवं पश्चिम के अधिकांश विद्वान् नाट्य की उत्पत्ति वेदों से मानते हैं जिसके समर्थन में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में आए हुए कथानक के अनुसार ब्रह्मा ने सभी देवों की प्रार्थना पर चारों वेदों से सार तत्त्व लेकर नाट्यवेद की रचना की। इस नाट्यवेद को समृद्ध बनाने में सभी देवाओं ने अपना.अपना योगदान दिया–

प्रीतस्तु प्रथमं शक्रो दत्तवान्स्वं ध्वजं शुभम्।
ब्रह्मा कुटिलकं चैव भृङ्गार वरूणः शुभम्।
सूर्यश्छत्रं शिवस्सिद्धिं वायुर्व्यजनमेव च।
विष्णुः सिहासनं चैव कुबेरो मुकुटं तथा।
श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्य ददौ देवी सरस्वती।
शेषा ये देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
तस्मिन्सदस्यभिप्रेतान्नाना जातिगुणाश्रयान्।
अंशाशैर्भाषितं भावान् रसान् रूपं बलं तथा।
दत्तवन्तः प्रहृष्टास्ते मत्सुतेभ्यो दिवौकसः।।

ना. शा. 1/60–64

यह नाट्यववेद त्रैलोक्य के भावों की अभिव्यक्ति का साधन माना गया और लोक का सुख. दुःखमय स्वभाव ही आंगिक, वाचिक सात्त्विक और आहार्य आदि अभिनयों से युक्त होकर नाट्य कहलाया।

इस कथा को भले ही काल्पनिक माना जाए किन्तु यह तथ्य स्वीकार करने योग्य है कि नाट्य की उत्पत्ति वेदमूलक है। ऋग्वेद में नाट्य के बीज यत्र.तत्र बिखरे पड़े हैं। ऋग्वेद में अनेक ऐसे सूक्त विद्यमान हैं, जिन्हें संवाद.सूक्त कहा जा सकता है, जिनमें नाट्य.विषयक प्रभूत सामग्री संचित है। यही संवाद तत्त्व नाट्य प्रदर्शन के परिवेश में आकर वाचिक अभिनय कहलाता है। वैदिक साहित्य से लेकर परवर्ती संस्कृत साहित्य रामायण, महाभारत, पाणिनीय अष्टाध्यायी, पातंजल महाभाष्य में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में ईसा के कई सौ सदियों पूर्व नाट्यकला पूर्णतया विकसित हो चुकी थी। भरत ने इस नाट्यकला को सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है।

यजुर्वेद में नट के पर्यायवाची 'शैलूष' शब्द का प्रयोग मिलता है– ''**शैलालिनस्तु शैलूषाजायाजीवाः कृशाश्विनः।**'' रामायण में भी भरत की वनयात्रा के प्रसंग में शैलूष का प्रयोग मिलता है–

राजकास्तुननवायाश्च ग्रामघोषमहत्तराः।

शैलूषाश्च सह स्त्रीभिर्यान्ति कैवर्तकास्तथा।।

वाल्मीकि रामायण 2/83/15

पाणिनि के पाराशर्यशिलालिभ्यां 'भिक्षुनटसूत्रयोः' पाणिनीय अष्टाध्यायी 4/03/110 तथा 'कर्मन्दकृशाश्वादिनिः' पा. अष्टाध्यायी 4/03/111 से सिद्ध होता है कि पाणिनि के काल से पूर्व शिलाली और कृशाश्व दो आचार्य हो चुके थे, जिन्होंने नटसूत्र (नाट्यशास्त्र) का प्रवचन किया अर्थात् भारतीय नाट्यकला पूर्ण विकसित हो चुकी थी। महर्षि पतंजलि के

महाभाष्य में 'कंसवध' तथा 'बलिबन्ध' नामक नाटकों का उल्लेख मिलता है– **'ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति।'** महाभाष्य 3/02/111 इन ग्रन्थों के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों तथा वात्सायन कामसूत्र में भी नट तथा नाटकों का उल्लेख मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन तथा दिए गए प्रमाणों से यह पुष्ट होता है कि देवताओं, ऋषियों, राजाओं तथ कटुम्बियों के चरित्रों का अनुकरण कर उन्हें सामाजिकों को दिखलाना जिससे उन्हें आनन्द तथा उपदेश दोनों की प्राप्ति हो, नाटक कहलाया। नाट्य साहित्य का जो स्वरूप आज हमारे समक्ष उपलब्ध है उसके विषय में भी यही कहना उचित होगा कि नाट्य का उपलब्ध रूप हजारों वर्षों में परिमार्जित हो पाया और इस रूप में हमे प्राप्त हो सका।

5.4 दृश्यकाव्य – रूपक के भेद

वस्तु, नेता और रस ये तीनों रूपक के भेदक तत्त्व हैं। जैसा कि दशरूपककार ने लिखा है **'वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः।'** किसी एक रूपक की कथावस्तु, उसका, नायक, नायक की प्रकृति तथा उसका प्रतिपाद्य रस उसे अन्य रूपकों से भिन्न करता है। इस आधार पर आचार्यों ने रूपक के दशविध भेद स्वीकार किए हैं– नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, ईहामृग।

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।

व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।। दशरूपक –118

प्रिय छात्रों! इकाई के इस अंश में आप इन्हीं रूपक भेदों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

नाटक– दशविध रूपकों में नाटक का स्थान मुख्य है। इसका इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है जिसमें मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण पाँच सन्धियों का समावेश होता है। इसमें

न्यूनतम पाँच तथा अधिकतम दस अंक होते हैं। इसका नायक धीरादात्त कोटि का प्रख्यात वंश में उत्पन्न राजर्षि होता है। शृंगार अथवा वीर में से कोई एक मुख्य रस होता है अन्य रस गौण होते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम्, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमानाटकम् आदि इस कोटि के रूपक हैं।

प्रकारण— प्रकरण का इतिवृत्त कल्पित होता है। इसमें दस अंक होते हैं। इसका नायक धीरप्रशान्त कोटि का कोई आमात्य, ब्राह्मण या वैश्य होता है। इसमें भी पाँच सन्धियों तथा प्रवेशक आदि की योजना होती है। इसमें शृंगार रस मुख्य होता है तथा अन्य रस सहायक के रूप में होते हैं। इसकी नायिका कुलस्त्री, गणिका अथवा दोनों ही हो सकती है जैसे पुष्पभूषितम् में कुलजा नायिका, तरंगदूतम् में वेश्या नायिका एवं मृच्छकटिकम् में दोनों प्रकार की नायिका का वर्णन किया गया है।

भाण — यह एक एकाँकी रूपक है जिसमें अकेला पात्र विट धूर्तों के चरित्र का वर्णन करता है। इसमें एकमात्र विट नायक होता है जा आकाशभाषित के माध्यम से अपने तथा दूसरे के अनुभवों को सामाजिक के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसमें शौर्य वर्णन के द्वारा वीरता विलास या शृंगार वर्णन के द्वारा शृंगार रस की सूचना दी जाती है। भारती वृत्ति की प्रधानता के कारण इसे भाण कहा जाता है। इसमें लास्य के गेयपद आदि दसों अंगों तथा मुख और निर्वहण सन्धियों की योजना अंगों सहित होती है। 'लीलामधुकरम्' को आचार्यों ने भाण के रूप में स्वीकार किया है।

प्रहसन — इसका इतिवृत्त कविकल्पित होता है। इसमें एक अंक होता है तथा इसका नायक कोई अधम प्रकृति का व्यक्ति होता है। इसमें भाण के समान सन्धि, सन्ध्यंग की योजना होती है। इसमें आरभटी वृत्ति, विष्कम्भक और प्रवेशक का अभाव होता है। हास्य अंगी रस होता

है। यह शुद्ध, संकीर्ण और विकृत के भेद से तीन प्रकार का होता है। इनमें 'कन्दर्पकेलिः' शुद्ध प्रहसन, 'धूर्तचरितम्' संकीर्ण प्रहसन तथा 'कलिकेलिः विकृत प्रहसन है।

डिम– रूपक का वह भेद जिसमें विद्रव और उत्पात का बाहुल्य हो डिम कहलाता है। इसका कथानक इतिहासप्रसिद्ध होता है तथा देवता, गर्न्धव, यक्ष, राक्षस आदि 16 प्रकार के उद्धत प्रकृति के पात्र नायक होते हैं। यह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध और उन्मत्तादिक चेष्टाओं और उपरागों से युक्त होता है। इसमें प्रधान रस रौद्र होता है तथा अन्य रस सहायक होते हैं। इसमें अंकों की संख्या चार होती है। विष्कम्भक, प्रवेशक, कैशिकी वृत्ति तथा शान्त, हास्य और श्रृंगार रस का अभाव होता है। गर्भ तथा विमर्श सन्धियों को छोड़कर शेष तीनों सन्धियों का समावेश होता है। त्रिपुरदाह इसका उदाहरण है।

व्यायोग – व्यायोग का इतिवृत्त तथा नायक दोनों प्रख्यात होते हैं। इसमें स्त्री पात्रों की संख्या कम होती है तथा पुरुष पात्रों की संख्या अधिक होती है। इसमें एक अंक होता है जिसमें एक दिन की ही घटना का वर्णन होता है। इसमें ऐसे युद्ध तथा संग्राम का वर्णन होता है जो स्त्री के कारण न हो। इसका नायक प्रख्यात, धीरोद्धत्त राजर्षि तथा दिव्यपुरुष होता है। इसमें कैशिकी वृत्ति का अभाव होता है तथा हास्य, शान्त एवं श्रृंगार रस के अतिरिक्त कोई अन्य रस प्रधान होता है। 'सौगन्धिकाहरणम्' इसका उदाहरण है।

समवकार – समवकार में देव तथा असुरों से सम्बद्ध इतिहासप्रसिद्ध इतिवृत्त होता है। विमर्श को छोड़कार शेष चारों सन्धि की योजना तीन अंकों में होती हैं। प्रथम अंक में मुख तथा प्रतिमुख, द्वितीय अंक में गर्भ तथा तृतीय अंक में निर्वहण सन्धि की योजना होती है। इसमें 12 नायक होते हैं जो धीरोदात्त, प्रख्यात तथा दिव्य अथवा अदिव्य कोटि के हुआ करते हैं। वीर अंगी रस होता है। विष्कम्भक, प्रवेशक एवं कैशिकी वृत्ति का अभाव होता है। उपयोगिता की दृष्टि से वीथी के 13 अंगों की योजना होती है। गायत्री, उष्णिक् आदि अनेक प्रकार के

छन्द होते हैं। इसमें धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिविध शृंगार, स्वाभाविक, कृत्रिम और दैवज रूप त्रिविध कपट तथा चेतन, अचेतन और चेतनाचेतन रूप त्रिविध विद्रव होता है। इसके प्रथम अंक की कथा 12 नाड़ियों में, द्वितीय अंक की कथा 4 नाड़ी में तथा तृतीय अंक की कथा 2 नाड़ी में सम्पन्न होनी चाहिए। 'समुद्रमन्थन' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

वीथी – वीथी की रचना एक अंक में होती है। जिसमें एक पात्र आकाशभाषित के माध्यम से या दो पात्र उत्तर.प्रत्युत्तर के द्वारा अन्य काल्पनिक पात्रों से बात.चीत करते हुए चित्रित किए जाते हैं। इसमें शृंगाराधिक्य के साथ अन्य रसों की भी सूचना दी जाती है। इसमें मुख व निर्वहण सन्धियाँ होती हैं तथापि अर्थप्रकृतियाँ पाँचों होती हैं। शृंगाराधिक्य के कारण इसमें कैशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है। उद्घात्यक, नालिका, प्रपञ्च, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गण्ड, अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्यवहार तथा मृदव के भेद से वीथी के कुल 13 अंग बताए गए हैं। वीथी का सर्वोत्तम उदाहरण 'मालविका' है।

अंक – 'उत्सृष्टिकांक' अथवा 'अंक' में एक ही अंक होता है जिसमें कवि अपनी बुद्धि द्वारा किसी प्रख्यात वृत्त को विस्तृत करके प्रस्तुत करता है। इसका नायक कोई साधारण पुरुष होता है। स्त्रियों के विलाप का प्रचुर मात्रा में वर्णन के परिणामस्वरूप करुण अंगी रस होता है। इसमें सन्धि, वृत्ति तथा अंक भाण के समान होते हैं। भारती वृत्ति के प्रयोग के परिणामस्वरूप 'जय.पराजय' इसका उदाहरण है।

ईहामृग – ईहामृग का इतिवृत्त प्रख्यात तथा कल्पित होता है। इसमें चार अंक होते हैं तथा मुख, प्रतिमुख और निर्वहण तीन सन्धियाँ होती हैं। इसमें नायक तथा प्रतिनायक, प्रसिद्ध धीरादात्त मनुष्य अथवा देवता होते हैं। दिव्य तथा अदिव्य दस उद्धत पुरुष पताका के नायक होते हैं। प्रतिनायक का बल युद्धस्थान में प्रदर्शित कर किसी न किसी बहाने से युद्ध को रोक दिया जाता है और वध योग्य लोगों का वध भी वर्णित नहीं किया जाता है। कुछ आचार्यों

का मत है कि ईहामृग में एक ही अंक होता है तथा देवता ही नायक होता है। इसके विपरीत कुछ लोगों का मत है कि ईहामृग में नायकों की संख्या छः होती है। जिसमें किसी दिव्य स्त्री के कारण युद्ध होता है। यहाँ मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की नायक कामना करता है। अतः इसे ईहामृग कहते हैं। इसका उदाहरण 'कुसुमशेखरविजयादि' है।

5.5 प्रमुख संस्कृत रूपकों का परिचय

प्रिय छात्रों! इकाई के इस खण्ड में आप प्रमुख संस्कृत नाटकों स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमानाटकम्, मृच्छकटिकम् आदि की कथावस्तु का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे। अध्ययन के इस क्रम में आप कुछ अन्य प्रमुख नाटकों जैसे अनर्घराघव, कर्पूरमंजरी, प्रबन्धचन्द्रोदय आदि का भी परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

5.5.1 स्वप्नवासवदत्तम्

महाकवि भास ने 13 नाटकों का प्रणयन किया है जिसमें स्वप्नवासवदत्तम् का विशिष्ट स्थान है। उदयन कथा आश्रित इस नाटक में छः अंक हैं। इस नाटक का नायक उदयन एवं नायिका वासवदत्ता है। इसका अंगी रस श्रृंगार है। उदयन अपने राज्य में आकर वासवदत्ता के प्रेम में इतना वशीभूत हो जाता है कि आरुणि उसके राज्य पर अधिकार कर लेता है और उदयन को लावाणक नामक ग्राम में रहना पड़ता है। उदयन का आमात्य यौगन्धरायण अपनी योजना के अनुसार अपने और वासवदत्ता के जलने का मिथ्या वृत्तान्त फैलाकर वासवदत्ता को छद्मवेश में मगध की राजकुमारी पद्मावती के पास न्याय के रूप में रख देता है। कुछ समय के पश्चात् उदयन का पद्मावती से विवाह हो जाता है। मगध की सेना उदयन के राज्य को आरुणि से मुक्त करा लेती है। उदयन पद्मावती एवं छद्मवेश धारण करने वाली वासवदत्ता के साथ अपनी राजधानी कौशाम्बी में प्रवेश करता है। वहीं यौगन्धरायण समस्त

रहस्यों को उदयन के समक्ष निवेदित करता है। इस नाटक का स्वप्न अंक अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसके आधार पर इसका नाम स्वप्नवासवदत्तम् रखा गया है।

5.5.2 प्रतिमानाटकम्

भास प्रणीत रामकथा आश्रित इस नाटक में 7 अंक हैं। इसके नायक राम और नायिका सीता हैं। श्रृंगार रस प्रधान इस नाटक में राम के राज्याभिषेक के रुकने, वनवास, सीता.हरण, रावण वध, राम के राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। महाकवि ने इसका शीर्षक तृतीय अंक की कथा के आधार पर निर्धारित किया है जिसमें भरत अपने ननिहाल से लौटकर अयोध्या के बाहर.निर्मित प्रतिमागृह के पास जाकर अपने पूर्वजों की प्रतिमाओं के बीच पिता दशरथ की प्रतिमा देखकर शोकाकुल हो जाते हैं। प्रतिमागृह में वे अपनी माताओं से भी मिलते हैं और वहीं से भरत राम को लौटाने के लिए वन की ओर चले जाते हैं। इस नाटक में प्रतिमा की भूमिका मुख्य होने के परिणामस्ववरूप इसका नाम प्रतिमानाटक पड़ा।

5.5.3 मृच्छकटिकम्

शूद्रक विरचित मृच्छकटिक 10 अंकों का प्रकरण है। यह रचना भास विरचित 'दरिद चारुदत्त' नाटक से साम्य रखती है। इसका अंगी रस श्रृंगार है। इसका नायक चारुदत्त एवं नायिका वसन्तसेना है। इस प्रकरण रूपक में चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय कथा का वर्णन शूद्रक कवि द्वारा किया गया है। प्रथम अंक में एक ओर कवि ने चारुदत्त की दरिद्रता वर्णित की है तो दूसरी ओर राजमार्ग पर शकार एवं विट के द्वारा पीछा की जाती हुई वसन्तसेना का चित्रण किया गया है। अन्धकार का लाभ उठाती हुई वसन्तसेना अपने आभूषणों को चारुदत्त के यहाँ न्यास के रूप में रखकर अपने घर ले जाती है, फलतः इसके प्रथम अंक का नाम अलंकारन्यास रख गया है। द्वितीय अंक में चार दृश्य हैं जो वसन्तसेना के आवास तथा निकट के राजमार्ग से सम्बद्ध है। तृतीय अंक सन्धिच्छेद है जिसमें शर्विलक चारुदत्त

के घर से न्यास के रूप में रखे गये वसन्तसेना के आभूषणों को चुरा लेता है। चतुर्थ अंक मदनिका-शर्विलक है। इस अंक में शर्विलक चुराए गए आभूषणोंको देकर अपनी प्रेयसी मदनिका को स्वामिनी वसन्तसेना से मुक्त कराता है और उसे वधू बनाता है। पंचम अंक दुर्दिन है इस अंक में वर्षाकाल का भव्य वर्णन शूद्रक कवि ने किया है। षष्ठ अंक प्रवहण विपर्यय है। इस अंक में वसन्तसेना भयवश शकार की गाड़ी को चारुदत्त की गाड़ी समझकर बैठ जाती है और चारुदत्त की गाड़ी पर कारागार से भागा हुआ आर्यक बैठ जाता है। मार्ग में चन्दनक नामक एक सिपाही आर्यक को अभयदान देता है और उसकी गाड़ी आगे बढ जाती है। सप्तम अंक आर्यकापहरण है इसमें आर्यक चारुदत्त के पास पुष्करण्डक उद्यान में पहुँचता है। वसन्तसेना की प्रतीक्षा में चारुदत्त आर्यक को देखकर उसको अभयदान देता है और उसका बन्धन कटवाकर उसी गाड़ी में भेज देता है। अष्टम अंक वसन्तसेनामोटन है। इस अंक में शकार वसन्तसेना से अपना प्रणय निवेदित करता है। वसन्तसेना के मना करने पर वह उसका गला घोंट देता है। शकार वसन्तसेना को मृत समझकर चारुदत्त पर उसकी हत्या का अभियोग लगाने के लिये न्यायालय जाता है। नवम अंक व्यवहार है। इस अंक में तात्कालिक न्यायालय एवं न्याय प्रक्रिया का चित्र शूद्रक कवि ने प्रस्तुत किया है। दशम अंक संहार है जिसमें पालक को मारकर आर्यक राजा बनता है, वह चारुदत्त को मृत्युदण्ड से बचाता है। वसन्तसेना को चारुदत्त की वधू का पद मिलता है। इस प्रकार नायक-नायिका के समागम से प्रकरण की समाप्ति होती हैं।

5.5.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम्

अभिज्ञानशाकुन्तलम् महाकवि कालिदास प्रणीत 7 अंकों का नाटक है। इस नाटक का अंगी रस श्रृंगार है। इस नाटक का नायक दुष्यन्त एवं नायिका शकुन्तला है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व से ग्रहीत है। इसमें हस्तिनापुर नरेश दुष्यन्त एवं कण्व की पालिता

पुत्री शकुन्तला के प्रणय का वर्णन किया गया है। प्रथम अंक में मृग का अनुसरण करते हुए दुष्यन्त कण्व ऋषि के आश्रम में पहुंचते हैं और शकुन्तला को देखकर उस पर मोहित हो जाते हैं। द्वितीय अंक में राजा अपने प्रेम का निवेदन विदूषक से करते हैं तथा विदूषक को राजधानी भेजकर स्वयं आश्रम में रुक जाते हैं। तृतीय अंक में शकुन्तला की अस्वस्थता का वर्णन किया गया है। शकुन्तला दुष्यन्त के प्रति आसक्त है। वह दुष्यन्त के लिए एक पत्र लिखती है। दोनों का गान्धर्व विवाह हो जाता है। चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदायी का मार्मिक वर्णन महाकवि ने किया है। यह अंक इस नाटक का प्राण है। इस अंक में महाकवि ने प्रकृति प्रेम एवं वात्सल्य का बड़ा ही सुन्दर निदर्शन किया है। पंचम अंक में दुर्वासा के शापवश दुष्यन्त शकुन्तला को नहीं पहचान पाते हैं और दुष्यन्त के द्वारा दिया गया अभिज्ञान रूपी आभूषण भी शचीतीर्थ नदी में गिर जाता है। ऐसी स्थिति में शकुन्तला को अपमानित होकर राजसभा से जाना पड़ता है किन्तु इसी बीच मेनका उसे उठाकर मारीच आश्रम में ले जाती है। षष्ठ अंक में अभिज्ञान का वह आभूषण राजा को एक मछुआरे से प्राप्त होता है और दुष्यन्त को पूर्व वृत्तान्त का स्मरण हो जाता है। वह शकुन्तला के परित्याग से विकल हो जाता है। इसी बीच इन्द्र का सारथि मातलि उसे युद्ध के लिये लेने आता है। सप्तम अंक में दुष्यन्त राक्षसों का वध करने के पश्चात् मारीच ऋषि के आश्रम में रुकते हैं जहाँ शकुन्तला से उनका पुनर्मिलन होता है और इस प्रकार नाटक का सुखद अन्त होता है।

5.5.5 मुद्राराक्षसम्

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस भारतीय कूटनीति से ओत-प्रोत एक ऐतिहासिक नाटक है। वीर रस प्रधान इस नाटक का नायक चाणक्य है। नायिका एवं विदूषक रहित सात अंकों वाले इस नाटक में चाणक्य व आमात्य राक्षस के बुद्धिकौशल का विशाखदत्त ने वर्णन किया है। इस नाटक के प्रथम अंक में चाणक्य को राक्षस के तीन विश्वासपात्र सम्बन्धियों क्षपणक

जीवसिद्धि, कायस्थ शकटदास तथा श्रेष्ठी चन्दनदास के सम्बन्ध में गुप्तचरों से सूचना मिलती है तथा राक्षस की एक मुद्रा भी प्राप्त होती है, जो राक्षस की पराजय का कारण बनती है। द्वितीय अंक में राक्षस की कूटनीतिक पराजय का प्रथम दर्शन होता है। चाणक्य की जागरुकता के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त की हत्या की राक्षस की योजना विफल हो जाती है। तृतीय अंक में कौमुदी महोत्सव निषेध का वर्णन किया गया है। नाटक के चतुर्थ अंक में राक्षस को अपनी योजना की असफलता का पता चलता है। राक्षस पर्ववेश्वर के पुत्र मलयकेतु से सम्पर्क स्थापित कर उसे चन्द्रगुप्त की जगह नन्दवंश के सिंहासन पर बैठाने की योजना बनाता है। पंचम अंक में नाटक की मुख्य कथा का वर्णन है। इस अंक में मुद्रित लेख तथा आभूषण के साथ सिद्धार्थक पकड़ा जाता है परिणामस्वरूप मलयकेतु का विश्वास राक्षस से हट जाता है और वह राक्षस का विरोधी बन जाता है। राक्षस के विरोध के परिणामस्वरूप मलयकेतु अपने सहयोगियों के साथ पकड़ लिया जाता है तथा राक्षस को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। छठें अंक में राक्षस चन्दनक की प्रवृत्ति जानने के लिए कुसुमपुर लौट जाता है जहाँ उसे चन्दनदास को दिए जाने वाले मृत्युदण्ड की सजा की सूचना मिलती है। सातवें अंक में चन्दनदास को फाँसी के लिए वधस्थान पर ले जाया जाता है, जहाँ उसकी पत्नी व पुत्र विलाप कर रहे हैं। स्वयं को इस विपत्ति से बचाने के लिए उसका मित्र राक्षस वहाँ उपस्थित होता है और चाणक्य की मित्रता स्वीकार कर चन्द्रगुप्त का आमात्य बनना स्वीकार करता है। इसी घटना के साथ नाटक्क का अन्त होता है।

5.5.6 वेणीसंहारम्

भट्ट नारायण प्रणीत वीर रस प्रधान वेणीसंहार नाटक में 6 अंक हैं। इस नाटक का नायक भीम तथा नायिका द्रौपदी है। इसका कथानक महाभारत की कथा पर आधरित है। नाटक के प्रथम अंक में भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर दूत के रूप

में धृतराष्ट्र के दरबार में जाते हैं जहाँ दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रस्ताव का मजाक उड़ाते हुए उनको बन्दी बनाने की इच्छा प्रकट करता है। कृष्ण के इस अपमान से युधिष्ठिरादि का क्रोध पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। द्वितीय अंक में अभिमन्युवध के पश्चात् दुर्योधन अपनी पत्नी भानुमती से मिलता है। एक और भानुमती अपशकुनसूचक स्वप्न को देखकर अत्यन्त त्यथित है तो दूसरी ओर दुर्योधन अपनी काम क्रीड़ा के माध्यम से उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। उसी समय आने वाले अमंगल की सूचक भयंकर आँधी आती है, दुर्योधन के रथ की ध्वजा टूट जाती है। उसी समय अर्जुन की जयद्रथ की प्रतिज्ञा से घबराई जयद्रथ की माँ एवं पत्नी दुर्योधन के पास आकर जयद्रथ की प्राण रक्षा की प्रार्थना करती हैं तथा दुर्योधन उन्हें जयद्रथ की प्राणरक्षा का आश्वासन देता है। तृतीय अंक में द्रोणचार्यादि के वध की सूचना मिलती है। द्रोणवध से अश्वत्थामा आग बबूला हो जाता है। कर्ण के व्यङ्ग्य बाणों से आहत हो अश्वत्थामा कर्णवध को उद्यत हो जाता है। अन्त में दुर्योधन दोनों को समझाकर शान्त करता है। चतुर्थ अंक में दुःशासन के खून का प्यासा भीम अवसर पाकर दुःशासन पर आक्रमण करता है। दुर्योधन भी कर्ण को सेनापति बनाकर स्वयं दुःशासन की रक्षा के लिए आता है परन्तु भीम के प्रबल प्रहार से मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छा दूर होने के बाद दुर्योधन को दुःशासन की मृत्यु का समाचार प्राप्त होता है। पंचम अंक में धृतराष्ट्र और गान्धारी दुर्योधन से सन्धि कर लेने का आग्रह करते हैं किन्तु दुर्योधन उनके इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होता। इसी समय युद्धभूमि से कर्णवध की सूचना मिलती है। छठें अंक में पाँचालक आकर युधिष्ठिर व द्रौपदी को सूचना देता है कि सरोवर में छिपे दुर्योधन को भीम ने अपने व्यंग्य बाणों से उत्तेजित कर बाहर निकालकर गदायुद्ध प्रारम्भ कर दिया है तथी दुर्योधन का मित्र राक्षस चार्वाक युधिष्ठिर से बताता है कि महायुद्ध में भीम मारे गए इस दुःखद समाचार से युधिष्ठिर अग्नि में प्रवेश करना चाहते हैं उसी समय दुर्योधन के रक्त से

रंजित भीम उपस्थित होते हैं। द्रौपदी की प्रतिज्ञा पूर्ण होती है तथा श्रीकृष्ण के आर्शीवचन के साथ नाटक समाप्त होता है।

5.5.7 उत्तररामचरितम्

भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् में सात अंक हैं। रामायण कथा आश्रित इस नाटक के नायक राम और नायिका सीता है तथा करुण अंगी रस है। नाटक के प्रथम अंक में राज्याभिषेक के पश्चात् प्रजानुरंजन में रत श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन किया गया है। कुछ समय पाश्चात् चित्रकारों द्वारा निर्मित आलेख्यवीथिका में लक्ष्मण राम व सीता को ले जाते हैं। चित्रदर्शन द्वारा सीता के मन में वन विहार एवं गंगा दर्शन की इच्छा उत्पन्न होती है। उसी समय दुर्मुख नामक दूत के द्वारा सीता विषयक लोकोपवाद की सूचना मिलती है। अन्त में राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सीता को वाल्मीकीय आश्रम में छोड़ आते हैं। द्वितीय अंक में वासन्ती और आत्रेयी के संवाद से सीता विषयक विभिन्न तथ्यों की जानकारी मिलती है। उसी समय रामचन्द्र जी शम्भूक वध हेतु दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं तथा पहले देखे गए दृश्यों को देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। शम्बूक वध के पश्चात् रामचन्द्र जी अगस्त आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। तृतीय अंक छायांक के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं। तमसामुरला नामक दो नदी देवताओं के संवाद द्वारा वासन्ती से लव-कुश व सीता विषयक वार्ता को सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं तब अदृश्यरूपधारिणी सीता राम को होश में लाती हैं। तदनन्तर अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन हेतु राम अयोध्या लौट जाते हैं। चतुर्थ अंक में वसिष्ठ-अरुन्धती, राम की मातायें तथा जनक जी अतिथि रूप में वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश करते हैं। इस अंक में जनक, अरुन्धती तथा कौशल्या के बीच सीता परित्याग से उत्पन्न स्थिति का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया गया है। अंक के अन्त में लव-कुश द्वारा राम के अश्वमेधीय घोड़े को पकड़ने की घटना का वर्णन है। पंचम अंक चन्द्रकेतु तथा लव के

बीच लम्बा संवाद होता है। उसके पश्चात् भीषण संग्राम प्रारम्भ होता है। छठें अंक में लव चन्द्रकेतु संग्राम में राम जी का पदार्पण होता है। युद्ध बन्द होता है। दोनों श्रीराम को प्रणाम करते हैं। लव तथा कुश में सीता की आकृति की समानता देखकर राम प्रसन्न होते हैं तथा वहाँ उपस्थित वसिष्ठ, जनक, कौशल्या आदि को प्रणाम करते हैं। सप्तम अंक गर्भांक है। इस अंक में प्रजा के समक्ष नाटक खेला जाता है जिसमें गंगा तथा पृथ्वी देवता सीता को निर्दोष सिद्ध कर रामचन्द्र को समर्पित करती हैं। जृम्भकास्त्र की सिद्धि से लव-कुश का राम का पुत्र होना निश्चित हो जाता है तथा भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

5.5.8 रत्नावली

हर्ष प्रणीत रत्नावली चार अंकों की नाटिका है। इसका अंगी रस शृंगार है एवं नायक उदयन तथा नायिका रत्नावली (सागरिका) है। इस नाटिका में राजा उदयन तथा सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय एवं विवाह की कथा निबद्ध है। इसके प्रथम अंक में सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी के अनुसार मन्त्री यौगन्धरायण षड्यन्त्र रचकर सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या 'रत्नावली' को वत्सराज उदयन के यहाँ बुलवा लेता है तथा रत्नावली सागरिका के नाम से प्रच्छन्न रूप से दासी बनकर वासवदत्ता के साथ रहने लगती है। वासवदत्ता सागरिका को सदैव राजा से दूर रखने का प्रयास करती है परन्तु दैववशात् मदन महोत्सव के अवसर पर वह राजा उदयन का प्रथम दर्शन करने में सफल हो जाती है। द्वितीय अंक में सागरिका अपनी सखी सुसंगता के साथ मनोविनोद के लिए राजा का चित्र बनाती है। सुसंगता तथा सागरिका के प्रेमालाप को एक सारिका सुन लेती है और उसको दोहराने लगती है जिसे मकरन्दोद्यान में प्रवेश करते हुए उदयन सुन लेता है। उसी समय किसी वानर का उपद्रव होता है। सुसंगता व सागरिका दोनों भागती हैं। शीध्रतावश चित्रफलक वहीं छूट जाता है जो उदयन के हाथ में पहुँचकर गुप्त प्रणय को प्रकट करता है किन्तु

वासवदत्ता इस घटना से क्षुब्ध होकर अन्तःपुर में चली जाती है। तृतीय अंक इस नाटिका का हृदय का जा सकता है। चित्रदर्शन के उपरान्त उदयन सागरिका पर आसक्त हो जाता है। सुसंगता और विदूषक उदयन और सागरिका को माधवीलता मण्डप में मिलने का आयोजन करते हैं। संयोगवश वासवदत्ता को षड्यन्त्र का पता चल जाता है और वह वहाँ पहले ही पहुँच जाती है। राजा उसे सागरिका नाम से सम्बोधित करता है। वासवदत्ता क्रुद्ध होकर वहाँ से चली जाती है। जब सागरिका को इस विषय की जानकारी मिलती है तो वह लज्जावश फाँसी लगाने को प्रयत्न करती है किन्तु उदयन उसे बचा लेता है दोनों प्रेमालाप आरम्भ करते हैं। इसी बीच पुनः वासवदत्ता वहाँ आ जाती है और क्रुद्ध होकर सागरिका को कैद में डालकर उसको उज्जैन वापस भेज देने की अफवाह उड़ा देती है। चतुर्थ अंक में ऐन्द्रजालिक अपना खेल दिखाता है। महल में आग लग जाती है। वासवदत्ता सागरिका को बचाने के लिए राजा से प्रार्थना करती है। राजा उसे बचा लेता है। उसी समय सिंहल प्रदेश के राजा और मन्त्री आकर रत्नावली (सागारिका) को पहचान लेते हैं। तभी वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि वह उसके मामा की पुत्री है। वह दोनों का प्रेम-विवाह कराती है। इस प्रकार नाटिका का सुखद अन्त होता है।

5.5.9 अन्य रूपक

प्रिय छात्रों! अभी तक आपने स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमानाटकम्, मृच्छकटिकम् आदि के विषय में अध्ययन किया। अब आप संस्कृत साहित्य के कुछ अन्य नाटकों यथा अनर्घराघव, कर्पूरमंजरी, प्रबन्धचन्द्रोदय आदि का अध्ययन करेंगे।

1) **अनर्घराघव** – मुरारि की एकमात्र कृति अनर्घराघव प्राप्त होती है। अनर्घराघव की कथा के लिए मुरारि ने भवभूति के नाटक महावीरचरित को आधार बनाया है। अनर्घराघव नाटक में सात अंक हैं। इस नाटक के सात अंकों में राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र द्वारा

अपने आश्रम में ले जाने, राम के द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, ताड़का वध, विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण का मिथिला आगमन, सीता स्वयंवर, राम द्वारा धनुष भंग, राम, लक्ष्मण और सीता का वन-गमन, सीता हरण, राम-रावण युद्ध, राम का राज्याभिषेक आदि की कथा वर्णित है।

2) **कर्पूरमंजरी** – राजशेखर प्रणीत कर्पूरमंजरी चार अंकों का एक सट्टक नामक उपरूपक है। इसमें राजा चन्द्रपाल तथा रानी कर्पूरमंजरी की प्रणय कथा वर्णित है। रत्नावली नाटिका के समान यहाँ भी राजा अपनी ज्येष्ठा रानी के भय से अपनी प्रेमिका से छिपकर मिलता है। राजकुमारी कर्पूरमंजरी को तान्त्रिक भैरवानन्द स्नान क्रीड़ा के समय राजसभा में उपस्थित कर देता है। दोनों परस्पर आसक्त हो जाते हैं। कर्पूरमंजरी को रानी कारागार में डाल देती है किन्तु राजा सुरंग मार्ग से जाकर उससे मिलता है। भैरवानन्द रानी को यह बताते हैं कि लाट राजकुमारी कर्पूरमंजरी से विवाह होने पर राजा सार्वभौम सम्राट बना जाएंगे। तब रानी दोनों का विवाह करवा देती है। इस प्रकार इसका सुखद अन्त होता है।

3. **प्रबोधचन्द्रोदय** – प्रबोधचन्द्रोदय कृष्ण मित्र का एकमात्र रूपकात्मक नाटक है। इस नाटक में छः अंक है। इसकी विषय-वस्तु अद्वैत वेदान्त से सम्बद्ध है। इसमें पुरुष, मति, विवेक, श्रद्धा, उपनिषद् आदि के सहयोग से अविद्या, आदि अन्धकार को हटाकर विष्णुभक्ति द्वारा विष्णु पद रूपी अपने वास्तविक पद की प्राप्ति का वर्णन है।

4. **प्रसन्नराघव** – जयदेव प्रणीत प्रसन्नराघव में सात अंक हैं। इसका कथानक रामायण की कथा पर आधारित है। इसके प्रारम्भिक चार अंक बालकाण्ड पर आधरित हैं। रावण और बाणसुर का संघर्ष, वाटिका में राम-सीता का परस्पर अवलोकलन, राम-सीता विवाह तथा परशुराम का प्रसंग प्रारम्भिक चार अंकों का विषय है। पंचम अंक में राम-वनवास,

दशरथ की मृत्यु तथा सीता हरण का वर्णन किया गया है। षष्ठ अंक में सीता से वियुक्त श्रीराम का चित्रण अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। सप्तम अंक में विद्याधर और विद्याधरी के संवादों के माध्यम से युद्ध का वर्णन किया गया। इसमें रावण वध, राम का अयोध्यागमन तथा राज्याभिषेक का वर्णन प्राप्त होता है। उर्पयुक्त नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में प्रतिज्ञायौन्धरायण, अभिषेकनाटक, दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, प्रियदर्शिका, नागानन्द, महावीरचरित आदि रूपक भी लिखे गए।

5.6 दृश्य काव्य – रूपक की समसामयिकता

नाट्य-सौन्दर्य नाट्यशास्त्र पर पूर्णरूप से अवलम्बित रहा है। इसकी समृद्धि को लेकर ही यह व्यापक सशक्त और प्राणवान् बनने का प्रयत्न करता रहा है। भरतमुनि प्रणीत यह नाट्यशास्त्र कला-सागर की अतल गहराईयों और अनन्त व्याप्तियों को पहचानने के लिए प्रकाशस्तम्भ की भाँति आलोक विकीर्ण करता है।

एक नाट्य का स्वरूप निर्धारण करने में संग्रह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संग्रह क्या है? अभिनवगुप्त कहते हैं कि जिनसे प्रतिपाद्य वस्तु का सम्यग् रूप से ग्रहण हो, उसका परिगणन उस वस्तु का संग्रह है और यह ज्ञान साक्षात्कार रूप ही होता है। अभिनवगुप्त के अनुसार – '**सम्यग्ग्रहणं संग्रहः। यतः परं निर्विशङ्कप्रतीत्यर्थ प्रमाणान्तरं नाम्यर्थ्यन्ते। तच्च साक्षात्काररूपमेव।**' (अभिनवभारती) इस वस्तु की प्रतीति के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ती।

हम आधुनिक धारावाहिक या सिनेमा-जगत् में किसी भी फिल्म के निर्माण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम पटकथा लेखन को पाते हैं। कथानक या पटकथा उन सभी तत्त्वों (श्रव्य, दृश्य, व्यवहार तथा संवाद) की रूपरेखा होती है, जिनकी आवश्यकता किसी कहानी को मूवी या टीवी के माध्यम से बताने के लिए पड़ती है। कथानक के निर्माण में जिन स्तम्भों या चरणों

का उल्लेख किया जाता है उनका विधान हम अपने नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से पाते हैं। वर्तमान समय में जिस प्रकार प्रथम एक्ट में कहानी की भूमिका बनाई जाती है। कहानी की दुनिया या चरित्रों का परिचय दिया जाता है। नायक का परिचय एवं उसके अग्रिम संघर्ष की बात की जाती है। जब एकबार नायक लक्ष्य की ओर चल पड़ता है, तब द्वितीय एक्ट प्रारम्भ होता है। यही प्रक्रिया हमारे नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम के रूप में वर्णित है।

जब हम नाट्यशास्त्रीय परम्परा का अवलोकन करते हैं तो उसमें पाते हैं कि मंच का निर्माण कैसे हो? रंगशाला कैसी हो? मंच कितने प्रकार का होता है? मत्तवारणी का निर्माण कैसे होना चाहिए? नेपथ्यविधान कैसा होना चाहिए, जहाँ पर सामाजिकों के बैठने की व्यवस्था हो उसका निर्माण किस प्रकार होना चाहिए? इस सबका विधान हमारा नाट्यशास्त्र करता है। प्राचीन भारतीय वास्तुकला के विकास व उत्कृष्टता की झलक हम भरतमुनि विरचित 'नाट्यशास्त्र' में वास्तुकला के तत्त्वों पर विचार करके देख सकते हैं।

भरत ने मूलतः तीन प्रकार के नाट्यगृहों के निर्माण की सूचना दी है जो क्रमशः विकृष्ट, चतुरस्र व त्र्यस्र के नामों से वर्णित है। विकृष्ट प्रकार का नाट्यगृह आकार से आयत रूप में, चतुरस्र वर्गाकर तथा त्र्यस्र त्रिभुजाकार रूप में वर्णित है। भरतमुनि ने तीनों प्रकार के नाट्यगृहों के ज्येष्ठ, मध्यम तथा अवर ये तीन प्रमाण बताए हैं। इन तीनों में मध्यम की प्रशंसा करते हुए भरत कहते हैं–

प्रेक्षागृहणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते

यस्मात्पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत्।

नाट्यशास्त्र 2/21

अर्थात् गायन तथा कथोपकथन सरलता से सुना जा सकने के कारण मध्यम प्रकार का नाट्यगृह सर्वश्रष्ठ होता है। इसी स्थल पर भरत ने मनुष्यों के अनुकूल नाट्यगृह की लम्बाई एवं चौड़ाई आदि का भी वर्णन किया है। जिससे सहृदय दर्शक मंच पर की जाने वाली प्रस्तुति का भली प्रकार श्रवण तथा दर्शन कर सकें। जितने उत्कृष्ट प्रेक्षागृह होंगे, सामाजिक के जितने अधिक अनुकूल होंगे सामाजिक उसे उतना पसन्द करेगा। इसके साथ कौन से चित्र दर्शकों को दिखाने योग्य हैं, कौन से चित्र दिखाने योग्य नहीं हैं, इसका विधान एवं निषेध हमारा शास्त्र करता है। मृत्यु, शयन एवं युद्ध आदि को मंच पर प्रदर्शित करना हमारी नाट्यशास्त्रीय परम्परा में वर्जित माना गया है तथा इसकी सूचना हेतु सूच्य जनान्तिक, अपवारित जैसे नाट्यशिल्पों का विकास हुआ। नीरस एवं अदर्शनीय वृत्तांश अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से प्रस्तुत होता है।

इस प्रकार हमारी नाट्यशास्त्रीय परम्परा एक स्वस्थ परम्परा रही है। वर्तमान समय में यदि रूपकों की समसामयिकता को देखा जाए तो यद्यपि बहुधा इसका अनुपालन हो रहा है तथापि देशकाल, परिस्थिति के अनुसार कतिपय निर्देशक इन शास्त्रीय परम्पराओं का उल्लंघन कर रहे हैं, जिससे सामाजिक विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। युवास्था में प्रवेश कर रहे व्यक्तियों पर इसका प्रभाव तो पड़ता ही है कदाचित् शैशवावस्था भी प्रभावित होने लगी है। नाट्यशास्त्रीय परम्परा आनन्दोत्कर्ष की एक स्वस्थ परम्परा रही है जिसको ऋषि-परम्परा के नाम से भी जाना जाता है। नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों को जानने के लिए जिन लोगों ने वर्षों चिन्तन-मनन करने के बाद ग्रन्थ रूप में मूर्त किया ऐसे ग्रन्थ-प्रणयन परम्परा के प्रति भी हमारी श्रद्धा होनी चाहिए। हमारा प्रत्येक अभिनय उन नियमों के अनुकूल होना चाहिए। इससे न केवल एक प्रसिद्ध एववं समृद्ध परम्परा सुरक्षित होगी अपितु भारतीय नाट्य-विषयक

अवधारणा वैश्विक पटल पर अपनी छाप छोड़ेगी और वर्तमान एवं आने वाली पीढ़ी लाभान्वित होगी।

5.7 सारांश

प्रिय छात्रों! इस इकाई में आपने दृश्य काव्य – रूपक के विषय में अध्ययन किया। इस इकाई के माध्यम से आपने यह जाना कि दृश्य काव्य वह है जो दर्शनीय हो। कोई काव्य दर्शनीय तभी हो सकता है जब उसे रंगमंच पर पात्र (नट) अपने अभिनय द्वारा प्रस्तुत करे। विश्व साहित्य के प्रथम ज्ञान संग्रह ऋग्वेद से हमें नाट्यकला के अस्तित्व का पता चला। ऋग्वेद के संवाद सूक्तों तथा सोमपान के अवसर पर किए जाने वाले लघु अभिनय आदि को नाट्यकला के बीज के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से संगीत तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को ग्रहण कर नाट्यवेद की रचना की। 'रूपकों का उद्भव और विकास कैसे हुआ?' इस विषय में अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। कुछ विद्वान् नाटकों की उत्पत्ति वीरपूजा से मानते हैं, कुछ पुत्तलिका नृत्य से, कुछ स्वाँग नाटकों से और कुछ छाया नाटकों से। भारत एवं पश्चिम के अधिकाँश विद्वान् नाटकों की उत्पत्ति वेदों से मानते हैं। रस पर आश्रित इन रूपकों की संख्या दस है। नाटकों को रूपकों का मूल माना जाता है। इसमें नाट्य के सभी प्रमुख तत्त्वों वस्तु, नेता और रस का सांगोपांग वर्णन होता है। नाटक तथा प्रहसन ही मात्र ऐसे रूपक भेद हैं जिनमें कथावस्तु का विकास पाँच अर्थप्रकृतियों, पाँच कार्यावस्थाओं एवं पाँच सन्धियों के आयोजन के साथ होता है। रूपकों के वे भेद जो एक, दो या तीन अंकों वाले होते हैं, अभिनय की दृष्टि से सुविधाजनक होते हैं। इसमें पात्रों की संख्या कम होती है। इतिवृत्त एवं नायक की दृष्टि से नाट्य का सम्पादन दृश्य काव्य की एक अद्वितीय व्यवस्था है। इकाई के अध्ययन के इसी

क्रम में आपने संस्कृत साहित्य के कुछ प्रमुख रूपकों यथा स्वप्नवासवदत्तम्, मृच्छकटिक, प्रतिमानाटक, अभिज्ञानशाकुन्तला, वेणीसंहार, रत्नावली तथा अन्य नाटकों यथा कर्पूरमंजरी, प्रबोधचन्द्रोदय आदि के विषय में भी जानकारी प्राप्त की।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) दशरूपक (अवलोक टीका) : व्याख्याकार डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन, वारणसी, 2017

2) नाट्यशास्त्र – डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय 1912

3) संस्कृत नाट्यकोश – डॉ. राम सागर त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 1997

4) नाट्यशास्त्र का इतिहास – पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2012

5) साहित्यदर्पण – सम्पादक प्रो. योगेश्वर दत्त शर्मा पाराशर, नाग पब्लिशर्स, 2000

6) डपदौीप क्ंसंसए ब्वदसिपबज पद ैंदोतपज क्तंउंए ैवउंपलं च्नचसपबंजपवद च्अजण स्जकण

7- A. B. Keith, Sanskrit Drama, Oxford University Press London, 1970.

8- G. K. Bhatt, Sanskrit Drama, Karnataka University Press, Dharwar, 1975.

5.9 अभ्यास प्रश्न

1) रूपक का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ?

2) रूपक के कितने भेद हैं? स्पष्ट कीजिए।

3) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–

क) अभिज्ञानशाकुन्तलम्　　　　(ख) मृच्छकटिकम्

ग) वेणीसंहारम्　　　　(घ) रत्नावली

4) वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दृश्य काव्य की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।